छाया में

(उच्चकोटिकी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ)

लेखक

पहाड़ी

प्रकाशक—
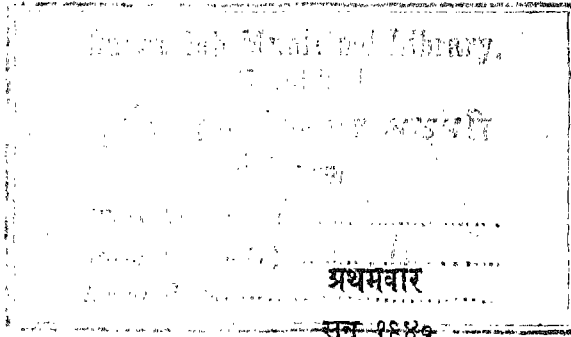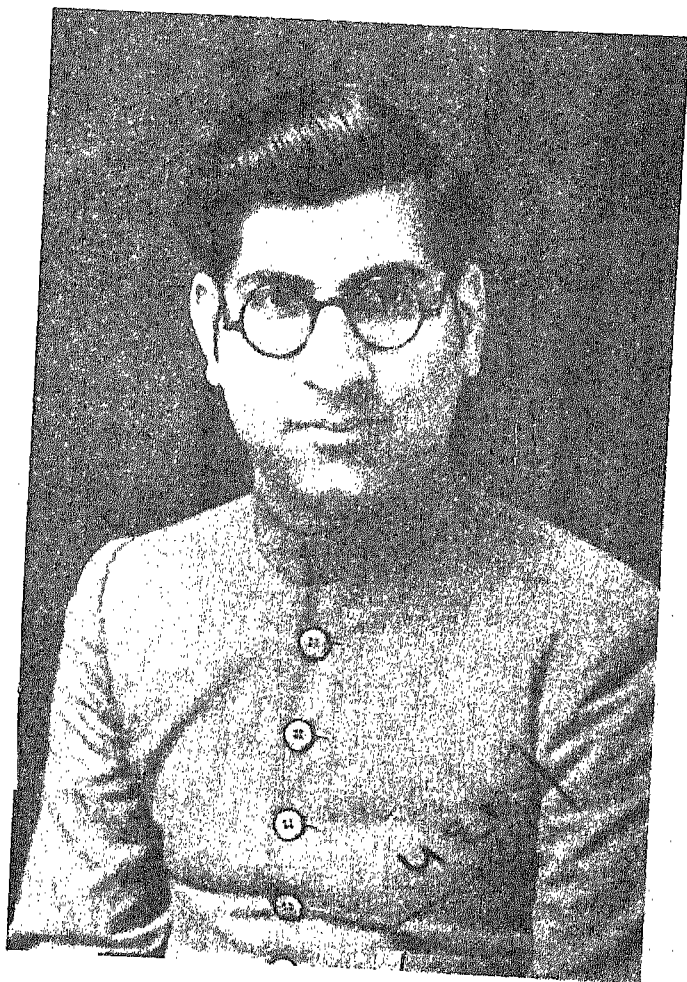
श्री पहाड़ी

प्रिय भाभी

उर्मिला को

शादी की भेंट

—पहाड़ी

विषय-क्रम

अविश्वास या…

"आपने इस गाड़ीके इञ्जनका नम्बर पढ़ा ?" मेरे साथी मुसाफिरने मुझसे पूछा।

"नहीं।" मैं उसकी ओर देखता हुआ बोला।

"तो फिर………।"

"क्या है ?"

"तेरह।"

"आखिर इसमें नई बात !" सामने बैठे हुए बंगाली बाबूने अपनी आंखोंके आगेसे अखबार हटाते उत्सुकता प्रकट की।

और वह व्यक्ति एक सन्दिग्ध झुंझलाहटमें बोला, "शायद आप लोग यह नहीं जानते हैं कि, वह नम्बर नाशका सूचक है। जिस महीनेकी तेरह

तारीखको आसमानपर सिर्फ तेरह तारे दीख पड़ेंगे और तेरह बार बिजुली कड़केगी, उसी दिन प्रलय होगा।"

"तब तो आज हमारी गाड़ीपर भी·········।" सामने बैठे एक साहबने कुछ कहना शुरू किया था, कि एक नौजवान साथीने बात काटी, "ऐसी बात न कहो। इस दुनियामें वैसे ही बहुत दुःख विखरा पड़ा है।"

"ऐसी बातोंपर विश्वास कर लेनेका जमाना आज नहीं है।" कोई भले मानुस अपना तर्क पेश करनेमें चूके नहीं।

तो मेरे साथीने उलझन और अचरज हटाकर कह दिया, "आपको क्या यह मालूम नहीं है कि उस साल तेरह तारीखको सूर्यग्रहण पड़ा था, तो एक शहरमें भूचाल आया, एक नाव डूबी और एक एक्सप्रेस मालगाड़ीसे लड़ी थी।"

सामने कुछ लड़के ताश खेल रहे थे, हमारी बातोंको सुनकर उन लोगोंने खेल बन्द कर दिया। एक उठा और हमारे पास आकर बोला, "आप लोगोंमेंसे कोई आदमी ताशका एक पत्ता निकाल ले। उस पत्तेसे भी भाग्य आजमाया जा सकता है।"

किसीने उन फैले पत्तोंमेंसे, एक पत्ता निकालकर देखा। उतने सारे पत्तोंके बीचसे जैसे कि वह अपने भाग्यका निर्णय करना चाहता हो। वह हुक्मका एक्का था।

"ठीक!" कालेजके विद्यार्थीने समाधान कराते हुए कहा, "ताशका पत्ता भी आनेवाली विपत्तिकी सूचना दे रहा है। नहीं तो यह मनहूस पत्ता ही क्यों निकलता।"

सबके चेहरे फक हो गये। जैसे कि यह पत्ता, भारी भयानक व्यवस्था

आगाह कर गया था। मेरे दिलपर भी एक गहरी निराशा छा गयी। एक भारीपन और पीड़ा थी। जैसे कि कोई घाव दुःख रहा हो। कभी-कभी मन अनायास उचाट हो उठता था।

और यह बात.............!

रेलका सफर भी अजीब ही होता है। एक डिब्बेमें कई अनजान आदमियोंके बीच बैठे रहना। उनकी बातों और धारणाओंमें अपनेको चालू कर, निजी राय देनी, फिर 'प्रेमका चलचित्र' और दुःखान्तके अध्यायोंके निर्माणके लिये भी कभी-कभी वह उपयुक्त जगह साबित होती है; किन्तु आजके सफरमें नहीं सोचा था, कि यह भी सुनना पड़ेगा। माना हम अलग-अलग व्यक्ति हैं, जिनके खयालात और दलीलोंमें कहीं भी समानता नहीं। और बिन्दुमात्रसे शुरू होनेवाली इस दुनियामें, जब शून्यसे इतनी आबादी बढ़ गयी, तब किसी बातपर अविश्वास भी नहीं होता है। जो हो जाय उसे नया कैसे मान लें?

"तेरह।" मेरे बगलवाला गुनगुनाया।

"क्या है।" मुझे बात पूछनी जरूरी लगी।

१ + ७ + ५ = १३! तेरह!! मेरे टिकटके नम्बरोंका जोड़ है।

अब विश्वास हो गया, कि इन सब बातोंके मिल जानेपर जरूर कोई अनहोनी बात होकर रहेगी। जिसके लिये हरएकको तैयार रहना पड़ेगा। जैसे यह विपत्ति आकर टलेगी नहीं। छुटकारा नहीं मिलेगा। बात हरएक पर लागू होती मिली। वह गिनती और संख्या भी हमारे जीवन-हिसाबसे सम्बन्धित है, आजतक यह नहीं सोचा था। यह सब जान लेनेको फुर्सत भी

कभी नहीं मिली। भले आदमी बेकारका झगड़ा कब मोल लिया करते हैं।

————एकाएक गाड़ीने क्षीण-स्वरमें सीटी दी। सब चौंक उठे। लगा कि जो सोचकर तय किया, वह अकाट्य है ही। एक, दूसरेके चेहरे पर देखने लग गये। हरएक वैयक्तिक-रूपमें अपनेको समझने लगा। बाहर सांय-सांय हवा चल रही थी। सब संभल गये। गाड़ी रुक गयी थी। चारों ओर घना जङ्गल था। और सिगनलका रंग लाल था। लेकिन गाड़ी फिर चल पड़ी। हरएक अपनेमें अपने बीते जीवनकी यादगारें टटोलने लगा। दुःखमें सर्वदा सही बातें याद आती हैं।

न जाने किसने पहले-पहल अपने दिलका ताला तोड़, भावुकतामें, अपने जीवनपर लागू होनेवाली घटनाओंका बखान शुरू किया। वह जो बूढ़ा किना-रेपर था, उसके आगे-पीछे कोई नहीं। आज निपट अकेला है। उसकी मौतपर, उसका अपना कोई भी अफसोस करनेवाला नहीं। वह भी गृहस्थ था। उसके भी बीवी-बच्चे थे। एक सालकी प्लेगमें सब सफाई हो गयी। तबसे वह फकीर बना तीर्थयात्रा किया करता है।

उसके पास बैठे आदमीने समझाया, "यह बेकार बात है। होनहार भी कभी टला है। उस भविष्यको कौन पकड़ पाया ?"

कि सामने बैठे वकील साहबने बात शुरू कर दी, "आप लोग शायद यह नहीं जानते कि मुझे हृदयरोग है, डाक्टरोंका कथन है, कभी भी हृदयकी गति रुक सकती है। अब सोचता हूँ, उसने ठीक कहा था, कि कभी कहीं भी मौत आ जावेगी। मेरा दिल मिचला रहा है। सांसकी गति भी तेज महसूस होती है। मेरा तो विश्वास है, मेरी मृत्यु निकट आ गयी। मैं

अपनी वसीयत और कागजात वगैरह ठीक करके वकीलके पास सौंप आया हूँ। आप लोग बेकार कुछ न सोचें। मुझे ही मरना है। यह झूठ नहीं होगा। मनहूस घड़ी मुझपर टल जावेगी।"

——तभी एक विद्यार्थी कह बैठा, "आप गलत कह रहे हैं। मुझे तो जीनेका जरा भी उत्साह नहीं है। न जाने किन-किन उम्मेदोंके साथ एम० ए० पास किया था। पास करनेके बाद सोचा, अब निश्चिन्त होकर रहूंगा। लेकिन मुसीबतोंने साथ नहीं छोड़ा। बेकारी—बेकारी !! पिछले दिनों रहने और खाने-पीनेकी ठीक व्यवस्था न होनेकी वजहसे बीमार पड़ गया। सरकारी अस्पतालमें भरती हुआ। खांसी लगातार जोंककी तरह चिपटी रही। बुखार भी आया करता था। डाक्टरोंने दो महीने रखनेके बाद निकाल दिया, कहकर, क्षयके मरीजका क्या है। वह तो सालों रोग घसीटता-घसीटता पंगुकी तरह जीवित रहा करता है। अस्पताल कोई स्वर्ग के रोगियोंके लिये आश्रय थोड़े ही है। अब आप ही समझिये कि मैं उत्साह कहांसे बटोर लाऊं। मैं खुद उस मौतसे निपटना चाहता हूँ, ताकि इस व्यर्थ शरीरसे छुटकारा पा जाऊं। आज तेरहका नम्बर देखकर••••••।"

वह खांसने लगा। बड़ी देरतक उसकी खुट-खुट-खुट करती खांसी डिब्बेके पटड़ोंपर खट-खट-खट बज, प्रतिध्वनित हुई। वह सुस्त पड़ धीमें स्वरमें बोला, "ऐसी जिन्दगीको चालू रखकर क्या फायदा है। आज अब निश्चिन्त हो•••••••••।"

"ओ-हो-हो-हो !" हमारे नजदीक बैठे, बरांडी कोट पहिने, पलटनके हवलदारने हंसते हुए कहना शुरू किया। "मौतकी मंजिल पार करनेवाले, एक ऐसे ही दिन मैंने प्रेम किया था।"

"प्रेम !" मैंने हल्के दुहराया।

"हां, फ्रांसकी लड़ाईकी बात है। तब मेरी उम्र अट्ठाइस सालकी थी। रातको हमारी टोलीने एक जरमनोंकी टुकड़ीपर धावा बोला था। मैं घायल हुआ। अस्पतालकी चारपायीपर लेटा-लेटा बहुत निराश हो जाया करता था। सोचता, मौत अपनोंसे हजारों मील दूर, परायोंके बीच आयी है। उस अवस्थामें मैं पागलोंकी तरह रोया करता था। आप यह तो जानते हैं, 'मिलटरी' की नर्सें दयालु नहीं होती हैं। सब यही कहते हैं। खुद यह बात मैंने परख ली थी। व्यक्तिकी मौतका हाल भी एक तीक्ष्ण फीकी मुस्कानके साथ सुनानेमें वे प्रवीण होती हैं। उनकी हंसीमें सर्वदा निर्दयताका कठोर पुट मिलता है। किन्तु वह नर्स जो मुझे देखने आया करती थी, बहुत सदयतापूर्ण उसका व्यवहार मेरे साथ था। बड़ी-बड़ी देरतक पास लोहेकी कुर्सीपर बैठी, छेद-छेदकर बातें पूछती। मेरे घरके हरएक व्यक्तिकी जानकारी का ज्ञान भी, वह अपनेमें संवारना न जाने क्यों चाहती थी। एक दिन वह नारी भावुकतामें कह बैठी, "जानते हो, मैं तुम्हारा इतना ख्याल क्यों रखती हूं ?"

'क्या ?' मैं आश्चर्यमें बोला था।

'यह देखो।' कहकर उसने मेरे पलंगसे लटकती नम्बरवाली तख्ती उठा, मुझे सौंपते हुए कहा, 'यह अभी-अभी बड़ा डाक्टर लगा गया है।'

"मैंने देखा था कि '×' का चिन्ह बना हुआ है।

"वह बोली, 'यह मौतका चिन्ह है।'

'मौतका ?' मेरा सारा शरीर कांप उठा था।

'हां, हमें जल्दी चालीस आदमियोंको जगह देनी है। मजबूरन बिस्तर

खाली करवाने हैं। इसके अलावा कोई चारा नहीं है, कि बेकार पड़े मरीजों-को मार डाला जाय। उनको रखनेसे लाभ ही क्या होगा। इसीलिये डाक्टर रोजाना चक्कर लगाकर, ऐसे मरीजोंकी तख्तियोंपर यह निशान लगा जाता है, फिर हमारे पास जहरके इन्जेक्सन देनेके अलावा कोई खास काम नहीं बचता। हुक्म नहीं टल सकता है।'

"मैं कुछ भी कह नहीं सका था। कैसी दुनिया थी वह। और इस सभ्यताका नतीजा कहां पहुंचनेवाला है! जहां एक, दूसरेकी मौत तकका इन्तजार नहीं करता है। जरूरतके आगे, आदमीके जीवनकी जरा भी कदर नहीं जानता।

और वह बोली थी, 'आज चौथा दिन है। रोजाना मैं वह चिन्ह मिटा देती हूं। जानते हो, क्यों? मेरा एक भाई था। तुम जैसा, तुम्हारी हीसी उम्र, उसकी भी थी। वह पिछले हफ्ते इसी अस्पतालमें मर गया।' कहकर, वह टप-टप-टप रोने लगी थी।"

——यह कहकर हवलदारने अपनी जेबसे मैला चमड़ेका बटुआ निकालकर, एक फोटो सबको दिखलाया। वह उस युवती नर्सका फोटो था।

"चुप रहो।" कोई चिल्लाया।

"क्या है?"

"तुमने नहीं सुना!"

"क्या?"

"वह सामने जंगलकी ओर·········"

उसी समय शृगालोंकी हूआँ–हूआँ–हूआँ सुनाई पड़ी। निपट सन्नाटा था। गाड़ी सरसराहटके साथ आगे बढ़ रही थी, जैसे कि उसे हम सबकी मौतसे कुछ भी मतलब नहीं है।

वह बोला "अभी-अभी मैंने देखा। सामने जंगलसे एक मनुष्य ऊँचा उठा। उठता चला गया और आसमानको छूकर, एकाएक न जाने कहां लोप हो गया।"

"लोप हो गया?" किसीने पूछा।

"वह भूत था।"

"भूत।"

"यह सच बात है। बचपनमें मैं मिडिल-स्कूलमें पढ़ा करता था। तब हम लोग शनीवारकी रातको अपने घर लौट आते थे। अगले हफ्तेके लिए सामान ले जाना पड़ता था। एक दिन हम गांव लौट रहे थे। रास्तेमें रात पड़ गयी। गांवसे दो मीलपर भैरवकी मढ़ी है। वहीं हमने रात काट लेनेकी ठानी। देवतासे भूत डरते हैं, उसके नजदीक इसीलिये नहीं आते हैं। आधीरात कोई मेरे साथीका नाम लेकर पुकारने लगा। मैंने डरकर अपने साथीको जगाया। हमने देखा—सामने कुछ दूरीपर सवारोंकी एक पलटन खड़ी थी। सब सुफेद कपड़ोंमें, सुफेद घोड़ोंपर सवार थे। उनका कप्तान हमारी ओर देखता हुआ, उङ्गलीसे हमें अपने पास बुला रहा था। फिर नहीं मालूम क्या हुआ। हम दोनों अगले दिन बेहोश वहां पड़े मिले थे। मेरा साथी तीन रोजके बाद मर गया था। आज मुझे वही याद हो आयी है। जरूर वह भूत ही था। मुझे उसने बुलाया। आप लोग अब न डरें। मुझे निश्चय ही मरना है। फिक्र ही तब क्यों की जावे।"

मैं चुपचाप सबकी बातें सुन रहा था। सोचता, इस दुनियांमें आदमी और उसके किस्सोंका कभी भी खात्मा नहीं होगा। भले ही एक दिन हम मिट जावें। उससे इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इन इतनी सच्ची

घटनाओंको सुनकर कोई सान्त्वना नहीं मिली। यह भी ठीक जंचा कि इस दुनियांमें मौत मांगनेवालोंकी एक प्राप्त संख्या है। भलेही मौत उनके वहकावेमें नहीं आवे। और यह मौत आकर, जब एक दिन सबको ढक लेगी तब क्या होगा? माना, मौत आकर बारी-बारीसे सबको साथ ले ले! इन सारे किस्सोंको सुन लेने तक मौत बैठी नहीं रहेगी। और तेरह नम्बरका इन्तजार . ... . !

मेरा ध्यान उस कोनेमें चुपचाप बैठे युवककी ओर गया। वह अपनी किताब पढ़नेमें मस्त था। बीच-बीचमें सिगरेट फूंकता; एक भरी नजरसे बार-बार हमें देख लेता था। सब अपनी बातोंमें इतने मशगूल थे, कि उसकी ओर देख लेनेकी फिक्र किसीको नहीं थी। न वही हमारे बीच आना चाहता था। उसे इन बातोंसे कोई खास दिलचस्पी न लगी। वह अपनेमें ही मग्न था। इतना हल्ला; यह उलझन मौतका वह सवाल—कुछ उसे घेर नहीं सका। बीच-बीचमें कुछ देर सिगरेट फूंकता, बातोंकी ओर कुछ सुनकर ध्यान देता, फिर अपनी किताबमें डूब जाता।

मैंने पास जाकर कहा,—"माफ करना। क्या आपको हमारी बातोंसे कोई दिलचस्पी और मतलब नहीं है?"

"मतलब!" उसने मुझे घूरते कहा और किताब बन्द कर दी।

"हमारी बातें आपने सुनी?"

उसने सिगरेटका पैकट मुझे सौंपते कहा,—"पहिले यह लीजिए। दुनियां भर की बातोंपर क्या राय दी जावे। फिर हमें हरएककी जिन्दगी या मौतका ठेका तो लेना नहीं है। वैसे कुछ मौत है भी नहीं, कि हम उससे वास्ता रख लें। समझ लो हम जिन्दा हैं—ठीक है। मर जावें—वह भी ठीक

ही होगा। कहीं गलत अपनेको क्यों मान लें। मौत आवे—आवे। यदि नहीं आवेगी, फिर भी हमें फिक्र नहीं है।

"आपका अजीब तर्क है ?"

"आपही न सोचिये, गाड़ी लड़ गयी या हम सब मर गये, वहींपर कहानी खत्म नहीं है। उसके साथ जो पिछली जान-पहचान है, वह आगे तभी-तभी आती है। लाशोंके फोटो अखबारोंमें छपेंगे। पहचान होगी, रिश्तेदारोंका गिरोह सवाल-जवाब करेगा। कोई लावारिस ही यदि निकल जायेगा तो भी उसके हिफाजत वाला सन्देह बरतना व्यर्थ बात है।"

मेरी समझमें कुछ भी बात नहीं आयी। भय तो सबको घेरे था। अब इस दलीलपर टिकनेकी क्या गुञ्जायश थी।

लेकिन वह बोला ही, "मेरी कोई खास कहानी नहीं है। साधारण बात प्रेम और उम्मीदका चल-चित्र है।"

"आप क्या कहना चाहते हैं ?"

"यही कि मैं आशा और प्रेमको विवाहके ऊपर मानता हूँ। आशा पूरी हो और प्रेम भी चले—दोनों बातोंका कौनसा लगाव है। धारणा भी यह गलत है। मैं यह कब कहता हूं कि मुझे जीवित रहनेमें खुशी है। या अपनी मौतपर दुःख होगा। मौत निराशाके खड्डोंको कभी भी न भर सकेगी। ताशका खेल ? हुकुमका इक्का मैंने ही निकाला था। कोई खास बात मुझे नहीं लगी। वही मेरे हाथमें आया था। उसकी किसी परवाहको अपनेपर लागू नहीं करता हूँ। वैसे ताश और भाग्यके मामलेमें, मुझे कभी अपने भाग्यके प्रति अविश्वास नहीं हुआ है। यही मेरी अपनी सामर्थ्य समझिए।"

अविश्वास या····

"सुना जो ताशपर विश्वास करते हैं, वे प्रेमपर अविश्वास बरतनेकी ओर उदासीन नहीं रहते हैं।"

"आपका मतलब यही है न, कि मैं निराश प्रेमी हूं, बात कोई ठीक नहीं है।"

वह रुक पड़ा। बाको सिगरेटके टुकड़ेको खिड़कीसे बाहर फेंक दिया। गाड़ी किसी स्टेशनपर ठहर गयी थी।

"—स्टेशन है।" कोई बोला।

"यहाँ यह सामनेवाला मकान है न। वहीं मेरी माँकी मौत हैजेसे हुई थी।" एक मुसाफिर बीचमें ही बोल बैठा।

गाड़ी चलने लगी थी, मैं उसी युवककी ओर देखने लगा। बड़ा चिन्तित-सा वह लगता था। उसने बोलना शुरू किया, "कुछ भी हो मुझे अपने जीवनसे काफी सन्तोष है। कहीं भी मुझे कमी नहीं लगती है। इस वक्त मैं अपने एक दोस्तके पास जा रहा हूँ। उसकी बीबी मेरे साथ कालेजमें पढ़ती थी। कुछ मैं उसे चाहता भी था। एक दिन जब उसने मेरे दोस्तके साथ विवाह किया, तब मुझे बेहद खुशी हुई थी। कल दोस्तका तार मिला। उसकी पत्नीने मुझे बुलाया है। वहीं इस वक्त जा रहा हूँ। बड़ी सुन्दर लड़की है वह। ऐसी लड़की मैंने आज तक नहीं देखी।"

यह कहकर उसने अपने दोस्तके घरका पता लिखकर दे दिया और अनुरोध किया, कि मैं अगले किसी दिन उससे जरूर मिल लूं।

तीसरे दिन मैं लिखे पते पर पहुंचा। उस लड़कीको देख लेनेका सवाल मनमें था। कितनी तारीफ उसने नहीं की थी। वहां पहुंचा। पहुंचकर दरवाजा खटखटाया। एक युवक बाहर निकला मैंने अपना नाम बतला दिया।

1921.

वह बोला, मैं खुद आपका इन्तजार कर रहा था। बैठिए, आपके दोस्त एक लिफाफेमें चिट्ठी लिखकर आपके नाम छोड़ गये हैं।"

लिफाफा लाकर मुझे दे दिया। मैंने खोलकर पढ़ा। लिखा हुआ था :

दोस्त ।

—मौत, जीवन और भाग्य, छोटी-छोटी घटनाओंके लगावसे अलग नहीं हैं—ठीक बात यह है भी। मैंने अक्सर ताशके खेलमें, हुकुमके इक्के आनेपर बाजियां जीती हैं। ट्रेनमें जब यह निकला, अपशकुनके प्रति अविश्वास मैंने किया था। तथ्यकी बात वह नहीं लगी थी। समझता था, कि सारी दुनियांके विश्वासमें अकेला खड़ा रह, अपनेको जीत सकनेकी सामर्थ्य रखता हूँ।

"लेकिन जब कि मैं यहां पहुंचा, तब देखा—वह बिलकुल पीली पड़ी थी। मुझे देखकर हंसी। अपने पास बुलाया। कमरेमें सन्नाटा था कोई हमारे नजदीक नहीं था। उसने कहा, 'जानते हो, मैंने तुमको अपने पास क्यों बुलाया है?'

'मुझे!'

'हां।'

'मैं क्या जानूं।'

'सुनो, मुझे तुम्हारी जरूरत थी। आजतक तुमसे एक बात छुपाई है। अब वह सब अपने पास रखना नहीं चाहती हूँ।'

"मैं चुप रहा।"

"वह मेरा हाथ, अपनेमें लेकर बोली, 'जानते हो, मैंने अपने जीवनमें सबसे ज्यादा किसे प्यार किया है?"

'——' मैंने अपने दोस्तका नाम लिया।

'तुम्हारा समझना ठीक है। पतिके प्रति सर्वदा मैंने अपना कर्तव्य निभाया। यह जानकर भी, कि तुम्हारे अतिरिक्त मैं किसीसे प्रेम नहीं कर सकूंगी। यदि हम विवाह कर लेते, तब यह बात निभ नहीं सकती थी। हम दोनोंमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो दूसरेपर जोर डाल सकता। हम तो एकसे, कमजोर थे। जानते नहीं हो तुम—एक आकर्षण होता है पुरुषमें, वह तुममें पाकर भी, लाचारी मैंने विवाह किया था। तुमने कभी कुछ पूछा नहीं, समझाया कब था। मैं भला क्या कहती। और तुमने समझा कि आजीवन मैं सन्तुष्ट रहूंगी। इन्कार नहीं करती। फिर भी एक ख्वाहिश मेरी थी। वही तुमसे कह, उस भारी भेदके भारसे अब बरी हो गयी हूं।

"——वह मर गयी थी। तब मैंने जाना कि दुनियाँ कुछ वहमपर भी जरूर टिकी है। तो एक ख्याल आया, कि जीवनसे एक खेल क्यों न खेल लूं।

"मैंने अपनी छ नली पिस्तौलमें सिर्फ एक कारतूस भरा है। यह मुझे याद नहीं है, कि वह किस खानेमें है, अब मैं दो 'फायर' हवामें कर, तीसरी अपने माथेपर करूंगा। सिर्फ एकबार मुझे परीक्षा लेनी है। यदि वह खाली होगा, या गोली पहली दूसरीमें छूट जायेगी, तो मैं फिर कोशिश नहीं करूंगा और सोच लूंगा, कि मुझे जीना जरूरी है। यदि मैं मर जाऊं, तब यह भी एक कहानी ही रहेगी। यदि मैं सच ही मर जाऊं, तो रेलके उन मुसाफिरोंका कथन गलत होगा, कि भाग्यसे लड़कर भी, हम उसे धोखा नहीं दे सकते हैं।

कोई एक मरनेवाला जरूर था। वह भूतवाला, वकील, क्षयका रोगी या..........अपनेको उनमें न गिन, उनका मजाक मैंने जरूर उड़ाया है। और अब यह खेल, खेल लेनेको मजबूर हुआ हूं।"

अपने पत्रमें उसने हुकुमका एक्का भी रख दिया था।

मैं अवाक् रह गया। और उसके दोस्तसे आश्चर्यमें पूछा, "वह कहां है ?"

——वह मुझे अपने साथ ले गये। कमरेका दरवाजा खोला, खिड़की-पर पड़ा रंगीन परदा हटाया। देखा मैंने————वह जमीनपर चित्त पड़ा हुआ था। उसकी कनपटीपर एक नीला घाव था और उसपर काला खून जम गया था।

तमाशा

"जीजी ।"

"क्या है सत्या ?"

"जीजी, जीजी !"

सुशीला उठी, देखा कि सत्या चुपचाप गहरी नींदमें बड़बड़ा रही थी। भादोंकी अंधियारी रात। बाहर लगातार कई दिनोंसे पानी बरस रहा था। बड़ी रात गुजर चुकी थी। वह सत्याके पलंगपर बैठ गयी। फर्शपर नीचे नौकरानी सो रही थी। उस सोयी सत्याने न जाने क्या स्वप्न देखा था, कि सुशीलाको नींदमें पुकारनेकी जरूरत पड़ गयी। यह सत्या एक अरसेसे बीमार है, सुशीलाको चैन नहीं। वह उस सत्याको देखती रह गयी। उसे तो यह भी डर था कि कहीं किसी दिन सत्या एकाएक कच्चे सूतके तागेकी तरह टूट न जावे। मनबुझाव कर लेती थी कि यह होगा

नहीं। सत्या घुल रही थी। अब उसके शरीरपर कोई भी तत्त्व बाकी नहीं रह गया है। आंखें भीतर घुस चुकी हैं। शरीर निर्बल है। कभी भी चटक जावे, सन्देह इसमें नहीं है।

सुशीला बोली—"सत्या !"

"हां जीजी।" सत्याने आंखें खोल ली थीं।

"अब जी कैसा है ?"

"अच्छी हूँ मैं।"

"तू तो बड़बड़ा रही थी।"

"मैं !" सत्या उलझनमें बोली।

"क्यों, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं जीजी।"

"तब जरूर कुछ बात है।" सुशीला हल्के मुस्करायी। अब व्यवस्थित रोग व रोगीके वातावरणके भीतर भी कभी-कभी हंसी-मजाक चलता है। इसे अपनेसे अलग कोई भी नहीं रखना चाहता है।

"हां, है-है ! बतलाऊंगी थोड़े ही।" सत्या गम्भीर हो गयी।

"जाने दे, पूछता कौन है।" सरलतासे सुशीला बोली।

"गुस्सा हो गयी जीजी ?"

"नहीं सत्या।" कहकर, सुशीलाने सत्याको चूम लिया। सत्या खिल उठी।

और सत्या बोली, "मैंने एक सपना देखा था।"

"सपना !"

"सुनेगी न।"

"हाँ ।"

सत्या तब बोली, "जीजी, मैं गोल कमरेमें बैठी पढ़ रही थी, तभी एक लड़का आकर बोला,—'चलेगी सत्या ?'

"उस लड़केको आजतक मैंने कभी भी नहीं देखा था। बड़ा सुन्दर था वह। और उसकी आँखोंके प्रभावमें मैं आ गयी। ना नहीं किया। उसके साथ हो ली। हम दोनों बड़ी दूरतक साथ-साथ गये। उसने एक कमरेका दरवाजा खोला। बहुत ही सजा हुआ कमरा था। वह बोला—'बैठ जाओ।'

"मैं बैठ गयी थी।"

"तुम जानती हो, मैं क्या करता हूँ।"

"नहीं।" मैं बोली।

"मिट्टीके खिलौने बनाता हूँ। तुम्हारा भी एक ढांचा बनाऊँगा। बैठी रहो।"

"वह दूसरे कमरेमें चला गया। कुछ देर बाद मैंने देखा कि मेजपर बैठकर वह मुझे देख रहा है। बड़ी देरके बाद उसने मुझे एक खिलौना दिखलाया। मैं आश्चर्यमें पड़ गयी। वह हूबहू मुझ जैसा था। वह फिर बोला,—"अब तुम जाओ"—दरवाजेतक मुझे पहुँचाया और सड़कमें कर, दरवाजा बन्द कर दिया। अकेले मैं घबड़ा गयी। तभी तुमने पुकारा था।"

"खिलौना तूने नहीं मांगा।" सुशीलाने पूछा।

"मांगना चाहती थी। मांग नहीं सकी।"

"ऐसी क्या बात थी।"

"उसके आगे मेरी कुछ भी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ी।"

"क्यों ?"

"मुझे लगा कि मैं उससे प्रेम करने लग गयी हूँ। मैं जाहिर नहीं करना चाहती थी, इसीलिये नहीं मांगा। वही तो मेरी यादगार उसके पास बची है।"

———किन्तु वह सत्या तो आज सुशीलाके नजदीक नहीं है। कई साल पुरानी, वह बात अब हो गयी। इसके बाद, दुनियाँ भी बदलती चली गयी। अब सुशीला भी जान गयी है कि इस दुनियाके भीतर कुछ नहीं। उसके हृदयमें आजकल एक नया सुख भर रहा है। वह जानती है कि अब वह मां बनेगी। बस खुद ही अपने दुलारमें फूली नहीं समाती है। सोचती है, कि 'बेबी' छोटा होगा—छोटे-छोटे कान, छोटी-छोटी आँखें। अपनेमें ही गणना करती, हँसती रहती है। वह खुश है, लापर-वाह है, कहीं कोई भी चिन्ता उसे नहीं घेरती। पति है, गृहस्थी—सारा जीवन सुचारु रूपसे चल रहा है, कहीं जरा भी कठिनता नहीं है। सरलतासे सब मिल जाता है। इतना सब पाकर चिन्ता कभी नहीं घेरती है। कहीं दुःख नहीं, पीड़ा नहीं, पिछले सारे जीवनको पतिने आज ऐसे ढक लिया है, कि कहीं भी कुछ सोचनेका मौका उसे नहीं मिलता।

फिर भी, जीवनमें सुख ही सब कुछ नहीं है। पिछली घटनायें कभी-कभी अवसर पाकर खुद ही फूट निकलती हैं। वैसे ही घनी बरसात है। पति दौरेपर चले गये हैं। अकेले उसका दिल नहीं लगता, कहांतक वह अकेली रहे। सारे कमरेको भी कभी-कभी कुहरा घेर लेता है। भारी घब-राहट दिलमें होती है। आस-पास दूर-दूरतक कुछ भी नजर नहीं पड़ता। अपने भीतर ही एक सीलन-सी भरती जा रही है। वह उठती है। बेकार

खिड़कीसे बाहर देखती है। कुछ नहीं! दूर-दूर तक वही घना फैला-फैला कुहरा और वही पानी—पानी—पानी! मन मारकर बिस्तरपर बैठ जाती है। किताब उठाकर पढ़ना चाहती है कि दिल बहला रहे। यह तरीका भी काम नहीं देता है। वह नहीं जानती है कि वह परेशान क्यों हो रही है। पति आज न सही, तीन-चार दिनमें लौट ही आयेंगे। फिर उसे अकेलापन महसूस नहीं होगा। लेकिन फौरेस्टरके इस बंगलेके आस-पास कोई भी बंगला नहीं है। जङ्गलके बीच, नजदीक आफिस और क्लार्कोंके क्वार्टर हैं। यहाँ भी उसके मनके लायक कोई नहीं। कुछ बहुत बूढ़ी हैं और अदबसे शिक्षा दे जाया करती हैं। एक सुरेन्द्रकी बहू है, वह बेचारी ठीकसे बात नहीं करती। अभी-अभी उसकी शादी हुई है, भारी लाजमें उसका हर वक्त घूंघट ही लटकता रहता है। कुछ भी पूछो, जवाब नहीं देगी। उसे यदि बुलाया जाय, बेकार ही होगा। वह इतनी सुबह आ भी तो नहीं सकती है। सुशीलाने सुरेन्द्रको कई बार देखा है। उसकी और बहू, दोनोंकी तुलना की है। उनके छोटे परिवारको वह हर तरहसे मदद देती है। इसकी एवजमें सुरेन्द्रकी बूढ़ी मां अपनी मेम साहिबाका गुणगान व चर्चा इधर-उधर सुनाती फिरती हैं। यह धन्धा वह बखूबी निभाती है।

अबके पहले-पहल सुशीला पतिके साथ आयी है। यह तीन महीनोंके बाद पहला ही मौका है कि पति दौरेपर चले गये हैं और वह अकेली है। तभी न जाने क्यों उसके मनमें बेचैनी और बेकली फैल रही है। यह तो एक छोटा-सा अवसर है। लगातार सारी जिन्दगी अभी तो उसे इसी तरह रहना है। नहीं, फिर 'बेबी'के साथ वह खेला करेगी। उसे इतना बुरा नहीं लगेगा। आदत भी पड़ जावेगी। यह इतना तर्क वह स्वीकार कर लेती है।

लेकिन खाली-खाली क्या करे ? बरसातके मारे तो नाकमें दम है। कुछ करनेको तबियत नहीं चाहती। मनमें उचाट है। और इसी तरह पानी बहेगा—कबतक ! पहाड़की बरसातका आजतक उसे इतना अनुभव नहीं था। फिर यह सफेद-सफेद कुहरा, अजीब-सी दौड़ लगाता है। कभी-कभी तो इतना घना हो जाता है, कि आँखें उसे बिलकुल नहीं छेद पाती हैं। उसने खिड़की बन्द कर दी। कमरोंके भीतर, कपड़ों व और चीजोंपर भी वह जम जाता है। सारे कपड़े भीगे लगते हैं। न जाने कब आसमान साफ होगा। अब वे आवेंगे, तो वह कहेगी कि, मुझे डर लगता है। दौरेमें भी साथ-साथ चला करूँगी। या मुझे मायके भेज दो। वे समझेंगे कि मायके जानेका वह सब बहाना है। इतना स्वार्थ भी वह अपने ऊपर साबित नहीं होने देगी। जी कड़ाकर यहीं रहेगी। यहीं, यहीं, यहीं ! लोग तो न जाने कहाँ-कहाँ रहते हैं। इस दुनियाँमें इससे भी खराब जगह हैं।

और ऐसी ही तो थी, वह बरसात :

लगातार चलती सत्याकी बीमारी। सत्या बीमार हुई थी और सुशीला अपनी उस सहेलीके साथ 'हिल-स्टेशन' आयी। न सत्याके बिना सुशीलाको चैन था, न सुशीलाके बिना सत्याको। जब सत्या बीमार पड़ी, माता-पिताके लाख मना करनेपर भी सुशीला नहीं मानी। कालेज पढ़ने नहीं गयी थी। और सत्याके पास चली आयी। अपनी उस प्यारी सत्याके आगे कालेजकी पढ़ाई व्यर्थ लगती थी। फिर सत्या सुशीलासे दो साल छोटी है। सुशीला-को सत्या पुकारती है—जीजी, जीजी। सुशीला तो सिर्फ कहती है—सत्या !

तमाशा

सत्याकी बीमारी बढ़ती जा रही थी। किसीकी भी समझमें कुछ नहीं आया। लेकिन सुशीलाको विश्वास है कि सत्या अच्छी हो जावेगी। फिर वही पुराना व्यवहार और बर्ताव चालू होगा। उसी तरह वे साथ-साथ रहेंगी। सत्याकी मां कहती थी—सत्याको सुशीलाकी शादीमें दहेज दे दूँगी। कौन दूल्हा ढूँढ़नेकी आफत सिर मोल ले।

सत्या कहती थी—'चुप रह मांजी। जीजी और मैं शादी नहीं करेंगी, हम तो डाक्टरनी बनेंगी। एक बड़ा अस्पताल खोला जावेगा। गरीबोंका इलाज मुफ्त किया जावेगा। विलायतसे पढ़कर लौटेंगी। जीजी बनेंगी बड़ी डाक्टरनी और मैं छोटी। जीजीका हुक्म मानकर चलूँगी। अभी कल ही जीजी और मैंने हिसाब लगाया था, रुपया ज्यादा नहीं चाहिये।'

यह बात तय थी कि सुशीला डाक्टरीकी उच्च शिक्षा लेने बाहर जावेगी। घरके लोग सहमत थे और ज़ब सत्या बीमार पड़ी, डाक्टरोंके कहनेपर उसके घरवाले उसे पहाड़ ले जानेवाले थे। रातको सत्याने सुशीलासे पूछा था, 'तुम साथ नहीं चलोगी जीजी!'

"क्यों नहीं सत्या!"

"देखो, झूठ नहीं बोलो? मांजी कहती थीं कि तुम तो परसों कालेज जा रही हो। सब इन्तजाम ठीक हो चुका है।"

"मैं तेरे साथ चलूँगी।"

"बहका रही हो।"

"नहीं सत्या।"

"और कालेज!" सत्या अपनी फीकी आँखोंसे सुशीलाको देखती रह गयी थी।

"क्या बात है ?" उलझनमें सुशीलाने पूछा था।

"तुम कालेज चली जाओ। मैं अच्छी हो ही जाऊँगी। क्यों बेकार तुम मेरे लिये मुसीबत झेलो।"

"सत्या !"

"क्या है जीजी ?"

"तू बड़ी जल्दी 'नरवस' हो जाती है। दो-चार महीनेके बाद कालेज चली जाऊँगी। भला सत्याके बिना मेरा मन वहाँ कैसे लगेगा। नहीं, कभी भी नहीं। तुझे भी साथ ले लूँगी। प्राइवेट 'मैट्रिक' तू देना।"

"तब साथ चली चलो जीजी।"

और सुशीला एक दिन कालेज न जाकर, जब सत्याके साथ चली गयी, तो घरवालोंको कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ था। पहले कुछ रुकावट घर-वालोंने डालनी चाही थी, फिर कुछ नहीं कहा। घरवाले उससे अधिक नहीं बोला करते थे। सिर्फ पिताजीने कहा था—अपने ही मनका होना भी ठीक नहीं होता है।

——अब वह गृहस्थीमें है। पति है। वह बड़ा अस्पताल कहीं भी नहीं। न सुशीला डाक्टरनी ही बनी। वह सारी ख्वाहिश मिट गयी थी। सत्याने भी साथ नहीं दिया। आज तो वह अपने पतिके साथ रहती है। वहीं रहना सीखकर मनमें मैल जमा करनेकी आदी नहीं रह गयी है। इतना ज्ञान भी अब है, कि जीवनमें घटनायें हैं, परिस्थितियाँ हैं, मजबूरियां हैं, जो कि कठोर सत्य है और कभी भी मिथ्या नहीं जातीं। शादीके बारेमें भी उसने अपनी निजी कोई राय नहीं दी थी। जब शादी हो गयी, उसने कहीं भी कुछ इनकार नहीं किया। अपना कोई मान, आदर, घमन्ड जैसे कि बाकी

नहीं रह गयी था। वह इतनी कमजोर हो गयी थी, कि उसे अपनी नारी-कोमलतापर विश्वास नहीं रह गया। जीवनमें सहज ज्ञानके भीतर, अपनी किसी तृष्णामें भी बँधी रह जाना, वह नहीं चाहती थी। उसके 'बेबी' होगा। वह मां बनेगी। जीवन-पर्यन्त, पति और 'बेबी' के साथ वह चलेगी। यही उसकी जगह है। यहाँसे कभी भी, भागकर छुटकारा पाने-वाला तकाजा, मनमें लाकर, विद्रोह मोल ले लेना जँचता नहीं है। सब्र जीवनका सबसे मजबूत स्तम्भ है। उसे पकड़े रहना चाहिये।

फिर यह सारा वातावरण। इस अकेले-अकेलेमें मन नहीं लगता है। वे पहले कह देते कि यह हाल वहाँ रहता है, तो वह नहीं आती। उन्होंने चुपके पूछा था—'चलेगी सुशीला ?'

मना करनेवाला ज्ञान न जाने वह कहाँ बिसार चुकी थी। पतिके साथ वह न कभी झगड़ती है, न तकरार बढ़ाती है। जो कुछ वे कहते हैं, उसको मान लेना अपना कर्तव्य गिन लिया है। फिर वह तो इतनी असमर्थ और लाचार है कि पतिके सहारे ही चल रही है। अपना उसके पास कुछ भी नहीं। वह चूक चुकी थी। निरर्थक पड़ी रही। पतिने आकर न जगाया होता, पड़ीकी पड़ीही रह जाती। यह उसका आजका जीवन, पतिकी देन है। अन्यथा वह तो जिन्दगीसे निराश हो चुकी थी।

और........और भी घना कुहरा। टीनपर, टप-टप-टप करता पानी। खिड़की उसने खोल ली थी। बाहर देखा, पानीके नाले बह रहे थे। पास ही बंगलेसे लगा, जो झरना था, उसकी तेज आवाज कानोंमें पड़ रही थी—छड़-छड़-छड़छड़! वह लौटकर बैठ गयी। सोचा, सत्याने उस आधी रातको कहा था—'उस लड़केसे प्रेम करने लगी हूँ।'

सुशीला कुतूहलमें चुप रही।

सत्या फिर बोली थी, 'उसे देखते ही मैं पहचान लूंगी। मुझे जरा अच्छा तो होने दे। अरी तू चुप क्यों है ?'

"क्या ?"

"तब क्या प्रेम करना ठीक बात नहीं है। उसने कुछ थोड़े ही कहा है। हम सब तो साथ-साथ रहेंगी, जीजी।"

"अच्छा, क्यों, बात क्या है ?"

"बड़ा अस्पताल खोलेंगे। पांच-छः सालकी बात ही तो है। बहुत काम पड़ा है। लेकिन जीजी ?"

"क्यों, क्या है !"

"वह मुझे इस तरह, क्यों बुलाकर ले गया था।"

"यह जानकर कि तू अस्पतालकी छोटी डाक्टरनी बनेगी। नुस्खे लिखेगी। सुशीला जीजीके साथ रहेगी। सब कुछ उसे भी तो मालूम हो गया है। तब मैं भला अकेली क्या करूँगी।"

"तो जीजी, तू कभी शादी नहीं करेगी ?"

सुशीलाने जवाब नहीं दिया था।

"देख जीजी, तू कभी शादी मत करना। चाहे मैं मर ही जाऊँ। तू तब भी जरूर अस्पताल खोलना।"

"धुत् ! क्या-क्या गणना करना सीख गयी।"

सुशीला कितना ही विश्वास करना चाहती थी कि सत्या बच जावेगी। उसका आपरेशन ठीक तरहसे हो गया है, उसकी आँतें अब ठीक हो रही हैं। डाक्टरोंके सन्देहके आगे, वह फिर भी डर जाती थी। उनका कहना

था कि भारी खतरा है। वह उनसे दलील करके, समझाना चाहती थी कि सत्या जिन्दा रहेगी, मरनेकी नहीं है। वे सब उसकी रायपर कुछ भी जवाब नहीं देते थे, जैसे कि व्यर्थ ही वह सब कुछ कहा करती है। कभी-कभी तो उसे गुस्सा चढ़ता कि डाक्टर ठीक इलाज नहीं कर रहे हैं। वह उनको ठीक तौर पर समझा देना चाहती थी कि—सत्या जिन्दा रहेगी जरूर रहेगी। वह खूब जानती है कि वे सब बदमाश हैं। नहीं चाहते कि सत्या एकदम अच्छी हो जावे। इससे उनकी रोजीपर असर पड़ेगा। उनको फीस नहीं मिलेगी। बूढ़े मिलटरीके कर्नलसे एक दिन उसने अपनी शङ्का समझायी, तब वह हँसते हुए बोला, 'मिस सुशीला, खुदा करे तुमको भी एक दिन ऐसा ही जिम्मेदार मरीज मिले।'

वह चुप रह गयी थी। मेडिकल कालेजके अधूरे एक सालके ज्ञानसे भला वह क्या रोग पहचान सकती थी। व्यवस्था भी बनानी नहीं सीखी थी। वह तो एक नर्सकी तरह, ठीक परवाह करना भी नहीं जानती थी।

सत्या अपने उस भारी सन्देहके बाद सो गयी थी। सुशीला बड़ी देर तक सत्याके पलंगके पास ही कुर्सीपर बैठी रही। अपने पलंगपर पहुँची थी कि सत्या चिल्लाई—'जीजी, जीजी!'

सुशीला कुछ भी समझ नहीं पायी थी। पास पहुँची। देखा कि सत्या सफेद पड़ गयी थी। और भयसे कांपती बोली—'जीजी, न जाने क्यों भारी डर लग रहा है।'

"मैं तो जगी हूँ।"

"फिर वह आया था।"

"कौन?"

"वही लड़का। उसके हाथमें वही खिलौना था। बोला,—'चल सत्या मेरे साथ। मुझे देरी हो रही है।"

"जीजीको मैं नहीं छोड़ूँगी। मैंने कहा था। और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा।"

सुशीला बात नहीं समझ सकी थी। दिमागी यह तमाशा या खेल और केवल स्वप्नही तो था! क्या सत्या मर रही है। उसने सत्याकी 'पल्स' देखी————सुस्त। वह घबड़ा गयी। उठकर बाहर आयी। दूसरे कमरेमें धरा फोन उठायाः नम्बर मिलाकर चिल्लायी थी—डाक्टर, सत्याका दिल डूब रहा है।

लौटकर सत्याके पास बैठ गयी थी। सत्या अब बोली थी, 'जीजी, मैं उसके साथ जाऊँगी।'

"और अस्पताल, वह सारी स्कीम!"

"मुझे माफ करना जीजी।"

"क्या सत्या?"

"मैं उससे प्रेम करती हूँ।"

"प्रेम!"

"तू अस्पताल चलाना। किसीसे प्रेम मत करना। वह मुझे बुला रहा है।"

और सत्याने फिर कुछ भी नहीं कहा था। भारी बुखार चढ़ा, और बेहोश हो गयी थी। बुखार एकदम उतरा और वह खत्म हो गयी। सुशीला 'हिल स्टेशन' से लौटकर फिर 'मेडिकल कालेज' नहीं गयी। उसके जीवनमें कुछ भी उत्साह बाकी नहीं रह गया था। सत्या उसकी सारी उम्मी-

दोंपर पानी फेरकर चली गयी थी। उसका मन उचाट हो आया। कहीं भी तबीयत नहीं लगती है। एक दिन उसके आगे शादीका सवाल उठा, वह साफ इनकार कर चुकी थी। लेकिन सत्याकी मांकी भारी कसमोंके आगे वह कुछ नहीं बोली। शादी हुई। सारा झगड़ा मिटाकर वह पतिके साथ आयी। कुछ भी हल्ला नहीं किया। उसके अस्वस्थ मन और शरीरने नया जीवन पाया। वह स्वस्थ होने लग गयी।

फिर वही बरसात। पिछली स्मृतिके साथ, आज फिर मनमें अड़चन आयी, परेशानी फैली। वह बहुत उलझ गयी। सत्या मर गयी थी। दुनियां कुछ नहीं। सब कुछ अपना-पराया -- एक ढोंग !

तभी उस कुहरेके बीच, उसने एक भारी चीख सुनी। किसीने पुकारा जीजी !

सुशीला उठ बैठी। बाहर पानी बरस रहा था। सत्याका वह स्वर, कुहरा छेदकर भी उसके कानोंमें पहुँचा। खिड़कीसे बाहर देखा—कुछ नहीं, कुछ नहीं ! फिर एक आहट हुई, जैसे कि कमरेमें कोई चल-फिर रहा हो। दूसरे कमरेसे आवाज आयी—जीजी, ओ जीजी !

वही सत्याका स्वर। वह चौंकी। उस कमरेमें पहुँची। धुँधला अँधियारा था। कुछ और नहीं दीखा। उसके पतिके कागजात मेजपर पड़े, फैले हुए थे। लगा कि कोई उन कागजोंको चीर-फाड़ रहा है। स्तब्ध सुशीला खड़ी थी, खड़ी रह गयी। सत्या कहाँसे आयी है। स्वर वही-वही था। वह पहचानती थी।

तभी फिर वही स्वर—जीजी।

लगा, पेटके भीतर जो 'बेबी' है, वह चलने-फिरने लग गया है। वही

बोल रहा है। भ्रम कुछ नहीं। वही सत्या है। सत्या 'बेबी' बनकर फिर एक बार आयी है।

कि उसने सीढ़ियोंपर हँसनेकी खिलखिलाहट सुना। सत्या तो हँस रही थी। कहाँ रही सत्या—निर्मोही कहींकी। अब पकड़कर, भागने नहीं देगी।

जल्दीसे वह बाहर निकली। सीढ़ियोंके पास पहुँची। घना अँधियारा था, लगा कि कोई नीचे भाग रहा है। सत्याकी आहट थी। वह उद्भ्रान्त हो उठी। जल्दी-जल्दी सत्याको पकड़ने उतरी। किन्तु पांव फिसल गया। वह धड़ामसे नीचे गिर पड़ी।

आवाज सुनकर नौकर बाहर आया। देखा कि सुशीला खूनसे लथपथ भीग गयी थी। खून बहता-बहता जा रहा था।

आध घण्टे बाद, बड़े डाक्टरने आकर कहा था, बच्चा मर गया है। आपरेशन होगा। जिन्दा रहनेकी कोई खास उम्मेद नहीं।

विवेकका सवाल

मिस्टर विनायक गंभीर चिन्तनमें पड़ गये। मुक़दमेकी हारसे मनमें उचाट हो आया। उन्हें अब यह विश्वास हो गया, कि हमीद क़ानूनकी नज़ीरें ग़लत पेशकरके दुनियाको धोखा देता है। कानूनके प्रति यह भारी अपराध लगा, और हमीदकी ईमानदारीपर सन्देह हुआ। हमीद सारी बुराइयोंकी जड़ निकला, अपनी इज्ज़त और बड़ाईके लिए उसे अनुचित-उचितका खयाल ही कब हुआ था। सब कुछ वह कर सकता है। वह खूनी और फ़रेबी साबित होने लगा। वह दुनियाकी सारी बातें समझ कर भी अपने व्यक्तित्वको ऊपर उठाये रखना चाहता था। आजके फैसलेके बाद अब जरा भी, कहीं कोई उलझन बाकी नहीं रह गई थी।

बैरिस्टर विनायककी दलील थी, नौकरानी बेकसूर है। वेश्याकी मौतसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसे खून कहना भूल होगी। रोगिणी वेश्याके

गलेपर अथवा शरीरपर कहीं भी कोई निशान नहीं था। वह बहुत कम-जोर थी। सिगरेट पीते-पीते सो गई और जब उसकी नींद टूटी तो कमरेमें धुआँ भरा हुआ मिला। वह घबड़ा गई। इधर-उधर भागनेकी व्यर्थ कोशिश करते-करते उसका हार्टफेल हो गया।

प्रोफेसर विनायक ला कालेजमें पढ़ाया करते थे। वे क्लास रूमके लिए उपयुक्त थे। उनकी आँखें भावुकता और अजीब खयालोंसे घिरी रहा करती थी। उनकी सचाई अविश्वसनीय नहीं जान पड़ती थी। उनके व्यक्तित्व और तर्कमें भारीपन नहीं था। वे किसी पर अपना खास प्रभाव नहीं डाल सकते थे। उनकी आवाज कालेजके कमरोंमें गूँजने लगती थी। उम्रमें वे हमीदसे कुछ बड़े लगते थे।

सरकारी वकील हमीद दुनियादार आदमी था। उसकी आवाज भारी थी। वह अपने विश्वासको पकड़कर चला करता था। उसे कहीं जरा भी डर नहीं लगता था। वह ठीक और पतेकी बात कहना जानता था। दुनियां के बीच रहकर उससे पूर्ण परिचित था। कहीं भी सस्ते तर्कका आदी वह नहीं रहा। अपनी दलीलको उठाकर वह जितना कहता था, उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता था।

बैरिस्टर हमीद जब कहनेको उठा था, तब सारे कोर्टरूममें सन्नाटा छा गया। वह बोलाः दो डाक्टरोंकी रायके मुताबिक शरीरके बाहर कहीं कोई भी घाव नहीं है किन्तु तीसरे डाक्टरने 'माइक्रस कोप' से घाव देखे हैं। माई लार्ड, आप उनको देखकर चौंक जाते, काँप उठते! हमारी सभ्यता क्या आखिर इस नतीजेपर पहुँच गई है? हमारा कर्तव्य क्या आदमीको धोखा देना ही रह गया है? माना कि जिन्दगीका कोई ठिकाना और वक्त नहीं।

सिर्फ एक वेश्याकी मौतका सवाल भी यह नहीं है। आदमीसे ऊपर न्याय के हम कायल हैं। मेरे दोस्तको दुनियांसे मतलब नहीं है। उनकी दृष्टि में पैनापन नहीं। आदमीके अन्दर टटोलकर देखना भारी मुश्किल बात है। जरूरतें और वक्त आदमीको मजबूर बना देती हैं। पैसा और स्वार्थ आदमी-को ढकता जा रहा है। अनजान नौकरानी कानून नहीं जानती थी। लोभ में पड़कर वह यह सब कर बैठी, फिर बचावके लिए सिगरेटका नाटक रच डाला। कानूनके आगे दयाका सवाल नहीं आता है। हमें तो गलतको गलत ही कहना चाहिए। नौकरानी कम उम्रकी है, यह देखकर भी कानून से बाहर नहीं। वह कसूरवार और खूनी है।

मिस्टर हमीदकी बहस उभरने लगी। एक-एक बात तक वह तोल-तोलकर कहता था। एक-एक शब्द दिलके भीतर फैल जाता था। जजने फैसला किया कि मुलजिम खूनी है—काला पानी!

और आज फिर विनायकके जीवनमें हमीदने आकर एक भारी हल्ला मचा दिया था। विनायक एक और बाजी हार गया। यह हार उसे परेशान किये थी। हमीद हमेशा ही उसका मजाक उड़ाया करता था। हमीद अपनी जीतसे बार-बार उसे कुचल डालना चाहता था। वह रोज ही एक अड़चन पैदाकर उसके आगे खड़ा होना सीख गया था। विनायकके दिलका मैल बढ़ता ही गया। क्या हमेशा उसे हार ही जाना है? दुनियाके आगे क्या वह यही पाता रहेगा? अन्यथा हमीदकी तेज आँखोंके आगे उसकी आँखें क्यों झुक जाती हैं।

किन्तु विनायक और हमीदका यह पहला मुकाबला नहीं था। दोनों साथ-साथ एक ओरसे ताक रहे, एक दूसरेको खूब पहचानते थे। बचपनमें,

क्लासमें, एक दूसरेके पास सीटोंमें बैठकर पढ़ते रहे। एक दिन हाकीकी मैचमें एक दूसरेके बरखिलाफ खेले। तब ही एक दूसरेके आगे आये, हमीद की टीम हार रही थी। जब गेंद उसके पास आई तो गुस्सेमें उसने जानकर विनायकके पाँवपर स्टिक मार दी। बस दोनों झगड़ पड़े। यहींसे वे अलग-अलग हो गये थे।

पाँच साल बाद कालेजमें फिर दोनों एक दूसरेके आगे खड़े हुए थे। विनायक कालेज-सिक्रेटरीशिपके लिए खड़ा हुआ और हमीद भी। दोनों अपने अपने लिए 'वोट' जमा करते रहे। विनायक कहता था: हमें अपने सिद्धान्तको मानकर चलना चाहिए। भविष्यकी एक बड़ी जिम्मेदारी हम पर है। हम अपने ही लिए नहीं, राष्ट्रके लिए हैं। हमें सावधानीसे चलना पड़ेगा। समझ हमारी जरूरत है—भावना नहीं।

हमीदकी बात थी: दोस्तों मौज करो। क्यों फिक्रें और तवालतें मोल लिया करते हो। आज कट गया है, कल भी कट जावेगा। 'फिलासफी' की परेशानियोंसे हमें मतलब नहीं है। हम लड़ना जानते हैं। हार-जीतसे वास्ता नहीं रखते।

विनायकको जीतकी बड़ी फिक्र थी। वह और कुछ भी नहीं सोचता था। यह छोटी लड़ाई ही उसके मनमें घबराहट पैदा कर देती थी। हमीद की जीत हुई। विनायकके पास आकर वह बोला—'दोस्त इसमें अफसोसका तकाजा नहीं। तुम यह जगह चाहते हो, खुशीसे ले लो। विनायक फिर भी उसकी दी टी-पार्टीमें शामिल नहीं हुआ था और आगे एक दिन दोनोंने डिगरी लेकर दुनियामें प्रवेश किया था।

फिर पन्द्रह साल तक दोनोंकी मुलाकात नहीं हुई। कुछ भी एक दूसरेका

ख्याल नहीं रहा। अलग अपने-अपने दायरेमें चलते रहे। इतनी बड़ी फैली दुनियामें कहाँ किसीका खयाल रहता है!

किन्तु एक दिन, एक मुकदमेमें विनायकने देखा कि हमीद उसके विपरीतवाली पार्टीमें सरकारी वकीलकी हैसियतसे है। अजीब मुकदमा था। दो दोस्त थे। उनमेंसे एक, एक दिन मरा हुआ पाया गया। डाक्टरोंका कहना था कि मौत संखियासे हुई है। यह भी साबित हो गया था कि आखिरी खाना उसने अपने दोस्तके यहाँ खाया है।

विनायककी दलील थी: भावुकताकी वजहसे यह मौत हुई है। दोनोंके बीच आपसी कोई झगड़ा नहीं था। कहीं कोई सन्देह भी तो नहीं उठता है। आदमीका अपने ऊपरसे कभी-कभी भरोसा उठ जाता है। वही हालत उस आदमीकी भी थी। उसका लड़का मरा, वह जायदाद भी कर्जमें बेच चुका था। अपनी मानसिक कमजोरीकी वजहसे असमर्थ होकर, उसने यह किया है।

हमीदका तर्क था: असम्भव भी घटना बन जाती है। मुलजिम यह सुनकर भी कि उसका दोस्त मर रहा है, वहाँ नहीं गया। उसके दोस्तने सबका नाम लिया किन्तु मुलजिमके लिये कोई भी सन्देशा उसने नहीं छोड़ा है।

कोर्टने फांसीकी सजा दी थी।

इसके बाद विनायक कई दिन तक 'क्लास' को ठीक तरहसे पढ़ा नहीं सका था। जब लड़के इस मुकदमेके सम्बन्धमें सवाल पूछते थे, तब उसे हमीद-के प्रति मनके भीतर बड़ी घृणा उत्पन्न हो जाती थी। हमीद दुनियाको ठग सकता है। उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं। पैसेको वह सहूलियत

समझ लेता है, इसी तरहके न जाने क्या-क्या विचार विनायकके मनमें उठते ही रहे। हारना भी तो हमीदको नहीं था। जीतसे ही उसका वास्ता रहता था। विनायक अपने मनको समझाना चाहता था। विद्रोह उठ-उठकर फैल जाता था।

× × ×

आज नौकरानीका वह चित्र आगे आया : वह अठारह सालकी युवती हमीदकी वजहसे जीवनसे अलग रहेगी। वह कितनी भोली लगती थी। अपने दिलको खोलकर उसने विनायकके आगे रो-रोकर छुटकारेकी प्रार्थना की। किस तत्वकी वह लड़की बनी थी। कितनी सहृदय, यह हमीद उसे समझ क्यों नहीं सका ; जजने जब फैसला सुनाया था; उसने सुना, विश्वास नहीं हुआ और फिर बेहोश जमीनपर गिर पड़ी थी। यह उम्मीद उसे कब थी ; अपने बैरिस्टरपर उसे पूर्ण विश्वास था। वह असहाय और लाचार थी।

विनायक फैसलेसे सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह लाइब्रेरी पहुँचा। वहाँ वह इसके खिलाफ नजीरें ढूँढ़ना चाहता था। कई किताबें उसने टटोली, नोट लिये, बड़ी देरतक लिखता रहा। दूसरे कमरेमें कोई पढ़ रहा था। वह अपनी ही बातोंमें डूबा रहा। उधर ध्यान ही नहीं दिया। आखिर अपने मनके मुताबिक वह कुछ पा गया। खुश होकर लौट रहा था। देखा, हमीद अपने उपन्यास पढ़नेमें लीन था। वह भौंचक्का रह गया।

हमीदने आँखें उठाईं, वह बोला, "मि० विनायक कानूनी किताबोंको अलग रख तुमको अपने स्वास्थ्यका भी खयाल रखना चाहिये। उपन्यास दिल बहलानेके लिये अच्छा साधन है।"

विनायक कुछ भी नहीं समझ सका, यह हमीद था या एक खयाल। आँखें फाड़कर खड़ाका खड़ा ही रह गया।

फिर हमीद बोला, "तुम बहुत ज्यादा काम करते हो, इतना पढ़ना भी तो एक बीमारी है।"

अब विनायक समझा कि उसका दुश्मन वहीं उसके आगे ही मखौल उड़ा रहा है। वह चुपचाप किताब मेजपर रख हमीदके नजदीक पहुँचा और बोला, "तुम मेरी हँसी उड़ा रहे हो।"

हमीद चुप रहा। उसे परिस्थितियोंकी परवाह नहीं थी। अभीतक उसके चेहरेपर हँसी फैली हुई थी। वह धीमेसे बोला, "विनायक यह नीच खयाल मैं नहीं रखता हूँ; न तुम्हारे लिये व्यक्तिगत कोई बुरी भावना मेरे दिलमें है।"

"यह मैं खूब जानता हूँ। अपने पेशेसे तुम दुनिया भरका पैसा चूसना चाहते हो। अपने स्वार्थके लिये तुमको भलाई-बुराई नहीं सूझती है। खुदाका डर भी तुमको नहीं है। आदमीको तो तुम कुछ समझते ही नहीं हो।"

हँसता हुआ हमीद बोला, "तब तो सारी दुनियाकी सभ्यतापर आग लगा देनेको ठेका मैंने ही लिया है।"

"कितनोंको फाँसियाँ, कालापानी, जेल.......।"

"लेकिन जज और जूरी ?"

"वे सब तुम्हारे बहकानेमें आ जाते हैं। उनकी ईमानदारी तुम्हारे आगे हार जाती है।"

"विनायक कभी तो बातोंपर ठीक विचार किया करो।"

"तुम बदमाश हो।"

"समझकी बात क्या कभी तुम नहीं सीखोगे।"

"बेईमान तुम हो।"

"विनायक तुम होशमें हो।"

"हाँ! हाँ!" कहता विनायक हमीदके ऊपर झपटा, हमीद चुपचाप सोफेपर बैठा ही रहा, विनायक गुस्सेमें खूब घूंसे मारता कहता रहा, "तुम इस दुनियाको ठग रहे हो। तुम खूनी हो!"

हमीद निर्जीव पड़ाका पड़ा ही था। वह कुछ भी नहीं बोला, विनायक चौंका। उसका घुटना हमीदके पेट और हाथोंकी उङ्गलियाँ हमीदके गलेको जकड़े थीं। कुछ देर बाद वह पसीना पोंछता हुआ उठा। यह सब ठीक बात नहीं थी। वह लाचार था। सँभलकर वह बोला, "हमीद, माफ करना; तुममें यह सब कैसे आ गया है?"

हमीद कुछ नहीं बोला, पड़ा ही रहा। कुछ भी जवाब नहीं दिया। चारों ओर एक भारी चुप्पी थी। केवल बीचमें घड़ीकी टिक-टिक-टिक सुनाई देती थी। विनायकने हमीदको देखा, खूब देखा, टटोला...। गुनगुनाया — मर गया, वही बात जो नर्सने की थी। दो मिनट और वह खड़ा रहा, सोचा कि उसने अपने दोस्तका खून कर डाला है। अब जज, जूरी और फाँसी! न्यायके हाथों उसे छुटकारा नहीं मिल सकता है।

कुछ देर बाद वह उठा। बाहर आकर इधर-उधर घूमता रहा, हमीद गहरी नींद सोया था। अपने पहलेवाले कमरेमें जाकर पढ़ता रहा। नौकर को बुलाकर पूछा, "क्या बज गया होगा?"

"साढ़े नौ।"

"बड़ी देर हो गई है।" यह कहकर वह बाहर आया और घरकी ओर रवाना हो गया।

उसे नींद नहीं आई, वह परेशान था, उसने सोचा कि हमीदके साथ उसने विश्वासघात किया है, परिस्थितियाँ ही ऐसी आ जुड़ी थीं। कालेज, स्कूल और आजतक दोनों एक दूसरेके साथ रहे। अब वह पुलीसका इन्तज़ार करने लगा। अगले दिन सुबहके समाचारपत्र उसने पढ़े। हमीदकी मौतका समाचार छपा था।

दिनको वह बाहर जा रहा था कि किसीने पुकारा, "मि॰ विनायक!"

एक युवक था। विनायक चौंक उठा, उसने सोचा कि वह कोई भेदी था, जेबमें रखी ज़हरकी शीशी उसने उँगलियोंसे पकड़ ली।

वह युवक फिर बोला, "हमीदके घर नहीं चलोगे?"

"कहाँ?"

"देशका बहुत बड़ा नुकसान हो गया है। वह तुम्हारा सबसे बड़ा दोस्त था।"

विनायक चुप रहा।

"तुमको ही नहीं, हम सबको अफ़सोस है। उसका कोई भी रिश्तेदार यहाँ नहीं है। मैं नौकरोंकी मददके लिये जा रहा हूँ।"

"पोस्टमार्टमके लिये?"

"नहीं, क़ब्रिस्तान ले जाना है।"

"एकाएक यह मौत! कोई शक तो नहीं है?"

"हमें खुशी है कि इस फ़जीतेसे हम लोग बच गये, कुछ महीनोंसे वह मेरा मरीज़ था। उसको दिलकी बीमारी थी। आज साँझको उसने कई

'सेट' टेनिस खेले थे, फिर ब्रिज। हार्टफेल हो गया।"

विनायक चुपचाप साथ हो लिया, सोचा, उसका दिल खराब था। दुनिया पागल तो नहीं हो गई है! गलेपर जरूर उँगलियोंके निशान होंगे।

"चलो।" डाक्टर बोला।

मकानके पास पहुँचकर दोनों एक कमरेमें चले गये, डाक्टर अब बोला, "मुझे कई मरीज देखने हैं। तुम अपने दोस्तका......!"

डाक्टर चला गया। विनायकने दरवाजा बन्द कर लिया, चादर उठाई, हमीद चुपचाप सोया—लाल मुँहपर हल्की मुस्कान थी। चेहरेपर विश्वास था, फिर वह मौत......?

उसने पास जाकर उसे छुआ। ठंढा! भारी डर लगा, फिर उसके गलेको देखा। उँगलियोंके निशान नहीं थे, कहीं भी खूनका सन्देह नहीं होता था।

विनायकने सोचा, वही गलत था, हमीद न्यायको खूब समझता था।

एकबार उसने जेबसे जहरकी शीशी निकाली, आखिरी चुम्बन हमीदका लेने झुका। हमीद कितना शान्त था। कर्तव्य-वश निश्चित लेटा हुआ जान पड़ा।

अपनी भूल उसे ज्ञात हो गई। शी[illegible] क दी।

दरवाजा खोल बाहर निकला। बहुत लोग जमा थे। चिल्लाकर वह बोला—"मैं खूनी हूँ।"

कुछ रोज

छतपर सुबहकी धूपमें बैठी हेम, सूनी और फीकी आँखोंसे देख रही थी—अलसीके पीले फूलोंसे भरे खेत, चारों ओर हरियाली, सामने घना आम और लीचीका बाग़ और वह सुन्दर छोटा संगमरमरका तालाब ! तालाबके नीले पानी और सफेद पत्थरपर, आँखें ज़रा अटक, फिर हट जाती थीं। दृष्टि चाहती थी, उसी पानीके भीतर छिपकर रह जाना; किन्तु मनकी अकुलाहटसे खुद वह अनमनी थी। आज उसे बिलकुल छुट्टी है। सारे झगड़े मिट चुके हैं। कुछ भी फ़िक्र नहीं है। इतने दिनोंतक जिन सारी परिस्थितियोंके बीच वह रही, उनको अब जीवनसे छुटकारा मिल चुका है। बिलकुल अस्तव्यस्त वह अब बैठी हुई थी। सारी का छोर ज़मीनपर पड़ाका पड़ा ही था। अपने शरीरको पूरा ढक लेनेवाली लाज, उसे वहाँपर नहीं थी। इस एकान्तमें वह निभ जाती है। एक बड़े

अरसेसे, यहाँ बैठना सीख, कब कब अपनेको उसने समझा लेना नहीं चाहा है। घरका सवाल, जमींदारीके झगड़े, अदालती मुकदमे—इन सबपर यहीं बैठकर वह कुछ-न-कुछ तय कर लेती है। उन सब और सारे झगड़ोंका निपटारा अब हो गया है। सब मिट चुके हैं। वह स्वतन्त्र है और कुछ देर बाद ही अपने मामाके यहाँ अब वह चली जायगी।

इतनेमें एक तीक्ष्ण चुभती सीटीकी आवाज़ उसने सुनी और अनायास ही उसके मुँहसे भी हल्की सीटी, सी-सी करती, अनजाने निकल गई। अब अपनी ग़लती पकड़ वह सिहर उठी। फिर भी लाचार थी। छिपकर ही कहाँ जाती। एकबार वह उसकी बातका उत्तर दे, उसे बुला चुकी थी। *उसके आगे खड़े होनेकी सामर्थ्य भले ही उसमें नहीं थी, भाग जाना फिर* भी उसने नहीं चाहा। सम्भलकर अपने भीतर-ही-भीतर कुछ समाधान करनेको ऊहापोह करती रही।

सुमन आया था। धीमी, गुनगुनाती सीटी बजाता हुआ आते ही बोला—"हेम!"

हेमने उलझनमें उसे देखा और चुप रही।

सुमनने हेमको अच्छी तरह देखकर कहा—"क्यों जी, अब क्या सोच रही है?"

क्या सोच रही थी, वह खुद नहीं जानती। वह कुछ जान लेना जरूर चाहती है, लेकिन मनमें भीतर एक भारी हल्ला और झगड़ा-सा मचा था।

सुमन फिर भी चुप नहीं रहा। उसने चुपके रहकर हेमके सिरके खुले बालोंको अपने हाथपर उठा लिया और उन्हें पीठतक खूब फैलाता हुआ बोला—"इनकी बार-बार याद आती थी।"

आजतक अपनी लज्जा-संकोच न करनेवाली हेम अब लाजसे भरने लगी। उसने बालोंको एक ओर कर, जूड़ा बना लिया, और फिर सारीसे सिर ढका। इन बालोंकी तारीफ सुमनसे सुनकर उसे बड़ी खुशी होती थी। पर आज उसे वह खुशी खोजे नहीं मिली।

गूँगी हो रही हेमसे कुछ उत्तर न पाकर, सुमन उसे झकोरते हुए बोला—"बोलती क्यों नहीं ?"

सुमनको यह कब मालूम था कि इन चन्द सालोंमें ही उसकी कीनी बदल गई है। दुनियाके झगड़ोंके भारी थपेड़ोंके बाद, अब उसमें उत्साह नहीं है। वह निर्जीव है और उसमें जीवन डालकर, उसके सोये विद्रोहको जगाना अनुचित होगा। वही अपनी पुरानी बातें सुमन जानता है। उसमें कहीं भी रद्दोबदल नहीं है। हेमको उसने चिट्ठी डाली थी और स्टेशनपर उसे न पाकर उसे आश्चर्य अवश्य हुआ था। वह मामाके घर आया, फुरसत पाते ही यहाँ दौड़ा आया। आकर ही उसने हेमको पकड़ लिया। समझा, कुछ गुस्सा है, हेमका स्वभाव ही ऐसा है। इसीलिये वह उसे छेड़कर, तङ्ग करनेकी धुनमें था।

हेम अब कुछ होशमें आई। सब दुःख और पीड़ा भूलकर बोली—"कोई ऐसे भी एकदम जनानेमें चला आता है।"

सुमन —"क्या !"

"नीचे बुआके पास जाकर बैठो।" कहती हुई हेम छतकी सीढ़ियोंकी ओर बढ़, खट-खट-खट नीचे उतरी और अपने कमरेमें चली गई।

सुमन चुप रह गया। हेमका यह जनानखाना उसकी समझमें नहीं आया, कब इसकी स्थापना हुई है। उसे तो कुछ भी मालूम नहीं। तब

क्या उसका इस तरह आना अपराध था ? हेमने मनमें न-जाने क्या सोचा हो, लेकिन यदि हेम सीटीका जवाब न देती, तो वह एकाएक इस तरह छत पर नहीं पहुँचता। बड़ी मुश्किलसे उसने हेमको सीटी बजाना सिखलाया था। फिर हेमका यह व्यवहार समझमें नहीं आया। वह तो कई बातें पूछनेको था। हेमने आखिर उसकी चिट्ठियोंका जवाब क्यों नहीं दिया ? हेमकी चिट्ठियोंकी उसने कितनी प्रतीक्षाकी थी। हेम तो वैसी ही है, बाहर कुछ भी बदली नहीं लगती।

हेम अपनेको स्थिर नहीं कर पाती थी। इतनेमें सुमनने एकाएक आकर एक भारी उलझन पैदा कर दी। सुमनका आना वह सुन चुकी है। इसीलिये जल्दी-जल्दी वह यहाँसे भाग जानेकी फिक्रमें थी। दोपहर तक सब कुछ इन्तजाम हो गया होता। यदि सुमन शामको आता, तो उसे खाली इमारतके अलावा कुछ भी नहीं मिलता। लेकिन परिस्थितियाँ अब बदल गई थीं। आखिर सुमन क्यों आया है ? हेमके मनमें उसपर भारी गुस्सा चढ़ता गया। इतना ही नहीं, आज भी वह उसपर अपने सारे अधिकारोंको अक्षुण्य समझता है। यह समझकर भी हेम सुमनको दोष देना नहीं चाहती। आजतक वह उसे अपनेसे हटाये ही रही। कारण, वह व्यर्थका झगड़ा नहीं चाहती थी। अपने भारी सब्रकी वजहसे वह मन-ही-मन सारी बातोंको मिटा डालना भी सीख गई थी।

सुमन तो वही पुराना है। चार साल पहले जैसा था—वैसा ही। यदि कुछ अन्तर है, तो इतना ही तब एफ्० ए० की परीक्षा देकर अपने मामाके गाँव आया था। और आज एम्० ए० एल्.एल्० बी० होकर आया है। अब आगे उसे पढ़ाईकी कुछ भी फिक्र नहीं है। कई बार सुमन

ने चाहा था कि अपने मामाके घर जाकर अपनी क्वीनीको देख ले। पर मौका नहीं मिला। उसकी माँ गरमीकी छुट्टियोंमें उसे कहीं जाने नहीं देती थी। आज वह मामाका न्योता पाकर आया है; लेकिन मामासे अधिक अपनी उस हेमको देखने आया है, जिसे वह हृदयसे चाहता था। वह हेम तो अब बिलकुल निर्जीव है। न-जाने क्या हो गया। उससे भी भागती-भागती फिरनेकी सोच रही है। हेम सीढ़ीसे उतर नीचे अपने कमरेमें चली गयी थी। हतबुद्धि सुमन खड़ा-का-खड़ा ही रह गया। चारों ओर नजर फेरी; समझमें कुछ भी नहीं आया। राह भर, उसने न-जाने क्या-क्या सवाल सोचे थे। इन चार सालोंमें वह कैसा रहा। अब उसका क्या इरादा है। सब कुछ जाननेका अधिकार हेमको था। अब तक अपने दिलकी कई बातें और किसीसे कहते वह डरता था। इस हेमके आगे किसीकी भी फिक्र नहीं रही।

लेकिन जिन्दगी सिर्फ कैरमका खेल नहीं है। चार साल पहले हेम और सुमन 'कैरम'का खेल दिन-भर बैठकर खेला करते थे। हमेशा हेम जीतती थी। सुमनको अपनी हारपर अफसोस कभी नहीं हुआ। जानकर भी सुमनने 'क्वीन'को लेनेकी कोशिश कभी नहीं की। हेमने एक दिन पूछा था—"क्वीन क्यों नहीं लेते ?"

"बिना राजपाटके क्वीनका क्या होगा ?"

"समझदार होते जा रहे हो"—हेम मुस्कुराई थी।

सुमन अपनी उस समझदारीको समझ भी नहीं सका था, कि हेमकी बुआने कमरेमें आकर कहा था—"सुमन, अब बड़ा हो गया है रे !"

जवाब न देकर सुमनने साष्टांग प्रणाम किया था।

बुआने उसकी माका नाम लेकर, न-जाने क्या-क्या पूछ डाला था। साथ ही उसकी मा और हेमकी माके सहेली भावका सहज जिक्र किया था। हेमको तो वह सब सुननेकी फुर्सत थी नहीं, चुपकेसे बाहर चली गयी थी। आगे उसके और हेमके बीच कोई रुकावट नहीं पड़ी। हेमके मा नहीं, पिता नहीं; इसीलिये जमींदारीका भार उसके सिर पर था। सुमन कहता— "मुझे वकील होने दे हेम, बस मैनेजर बना देना।"

"अभी से मनसूबे बाँधना शुरू कर दिया!"

"अरजी दे देनेसे कोई नुक़सान तो है नहीं।"

"तब यह कैरम-वैरम नहीं चलेगा, और......"

"और?"

"मैं बनूँगी मालकिन। तुमको मेरे सामने अदबसे बातें करनी पड़ेंगी। बिना इजाजत तुम मेरे कमरेमें नहीं आने पाओगे। सब शर्तें मान लोगे न!"

"लेकिन?"

"तब तो नौकरी हो चुकी। हमारे मुख्तार साहब ही ठीक हैं। साहब मैनेजरसे हमारा काम चल चुका। दिन-भर मुँहमें सिगार लगाये, पतलूनकी जेबमें हाथ डालनेसे न तो मालगुजारी वसूल होगी, और न ठीक इन्तिजाम ही हो सकेगा। शहरी मैनेजर साहब भला गाँवमें कैसे रह सकेंगे? चार दिनमें भाग जाओगे।"

"मुझे सब काम सिखला देना।"

"पढ़ी-लिखी होती तो।"

"अब पढ़-लिख लो।"

"कोई ठीक-सा मास्टर नहीं मिलता।"

"यह क्यों नहीं कहतीं कि मास्टरी भी मुझे करनी पड़ेगी।"

"जब पिताजी जिन्दा थे, तब एक ईसाइन पढ़ाने आया करती थी। यहीं रहा करती थी। उनकी मौतके बाद माने उसे निकाल दिया, पढ़ाई भी वहीं खतम हो गई। काम चला लेती हूँ। ज्यादा पढ़कर ही क्या होगा? हमारे लिए इतना ही काफी है।"

"मैं भी कहीं नौकरी ढूँढ लूँगा। वैसे तो वकालत चलनेकी भी पूरी उम्मेद है।"

"और यहाँकी देखभाल?"

"क्वीनी करेगी।"

हेम हँस पड़ती। कहती—"क्वीनी खाक करेगी? इतनी बड़ी जिम्मेदारी उससे नहीं निभेगी। रोज ही मुख्तार साहब कहते हैं—बेटी, इस तरह तो काम चलनेका नहीं। यहाँके झगड़ोंसे भी तंग आ गई हूँ। कुछ-न-कुछ झगड़ा लगा ही रहता है। एक मिनटको भी चैन नहीं है।"

"तभी तो कहता हूँ, सिर्फ चार सालकी बात है।"

"फिर कौन किसकी परवा करता है।"

"बात क्या है?"

इसका उत्तर न देकर, हेम कहती—"बागमें घूमने नहीं चलोगे?"

सुमन हेमकी ओर देखता ही रह जाता था, वे दोनों बागमें पहुँच जाते। बागका नौकर मालकिनको देख, झुककर सलाम करता था। सुमन हँसकर कहता—"मैं तो ऐसी लम्बी सलामी नहीं करूँगा!"

हेम जवाब देती थी—"तब तुम्हें रख ही कौन रहा है? कलेक्टर साहब कहते थे, कोई अँगरेज मैनेजर रखना ठीक होगा। लेकिन मैं

ठहरी फूहड़। उससे बातें करनेकी भी तमीज नहीं है।"

इतनेमें माली बहुत-सी अच्छी-अच्छी लीची और आम ले आता था। हेम और सुमन, तालाबके किनारे बैठ उनको खाने लगते थे। सुमन खाता-खाता कहता—"आदत खराब होती जा रही है। शहरमें तो ऐसी लीचियाँ मिलेंगी नहीं।"

"पारसल कराके बागसे भेज दूँगी।"

"तो बदलेमें मैं भी कोई अच्छा तोहफा भेजूँगा।"

"क्या?" —वह कुतूहलसे पूछती।

"बतानेसे महत्व घट जायगा।" —सुमन कहता।

"अच्छा बता दो।" —हेम मनौती करती।

"कुछ फायदा तो होगा नहीं।"

"फिर भी?"

"यही 'थैंक्स' लिखकर भेज दूँगा।"

"अँगरेजी पढ़कर मलेच्छ हो गये हो न।"

"साहब लोगोंका यही दस्तूर है।"

"लेकिन तुम तो वैसे साहब नहीं हो।"

सुमन चुपके से उठता और बड़ा-सा पत्थर पानीमें डालकर पानीको उछाल देता था। बहुत-से छींटे हेमके ऊपर पड़ जाते थे। वह बनावटी गुस्सेके साथ कहती—"तुम्हारी यह हरकत ठीक नहीं है।"

"क्या?" कहकर सुमन दो-तीन पत्थर और पानीमें डाल देता था। हेमकी साड़ी भींग जाती थी। सँभलकर वह कहती थी—"नौकरोंके सामने इस तरहका मजाक ठीक नहीं होता। वे अपने मनमें क्या कहेंगे?"

"क्या कहेंगे ?"

"तुमको तो लाज-शरम थोड़े ही है। मुझे तो हरएकका लिहाज चाहिए। लोगोंमें कानाफूसी होते क्या देर लगती है ?"

इस शिक्षापर सुमन चुपचाप मुरझा-सा जाता था। फिर दोनों उठकर, बागमें घूमने लगते थे। हेम उसको सब नये पौदे दिखलाती थी। उसके पिताको इसका बड़ा शौक था। एक तरफ बड़े-बड़े मोटे-मोटे गन्ने देखकर सुमन उसको तोड़नेके लिए बढ़ता था। हेम मना करती थी। कहती—"नहीं, ये दवाके लिए हैं। इनके नीचे मरे हुए साँपोंकी खाद है। जिस आदमीको साँप काटता है, उसे ये खिलाये जाते हैं। दूर-दूरके लोगोंको हम देते हैं। इसीसे इनकी इतनी हिफाजत की जाती है।"

सुमन जब घर लौटने लगता, तब हेम कहती—"बुरा तो नहीं मान गये ?"

"बुरा ?"

"तुम्हारे गुस्सेकी तारीफ तुम्हारी मामीसे सुन चुकी हूँ। हम दोनों एक-से ही हैं। रोज उसीकी चर्चा रहती है।"

"लेकिन मुझसे तो..........."

"इतने बड़े भारको लिये हूँ। नौकर-चाकर और जमींदारीपर हुकूमत भी तो करनी पड़ती है। कल आओगे, तब देख लेना।"

दूसरे दिन हेम बाहर आँगनमें बैठी हुई थी, इतनेमें सुमन पहुँच गया। उसके पास कुर्सीपर चुपचाप बैठ रहा। सामने कोई गाँवकी काली-कलूटी औरत बैठी हुई थी।

हेमने पूछा—"क्या है री ?"

"मैं उसके साथ नहीं रहूँगी।"

"अभी शादी हुए पूरे दो महीने भी नहीं हुए और झगड़ा शुरू हो गया! बात क्या है?"

"वह मुझे मारता है।"

"कोई कसूर करती होगी।"

"वैसे ही मार देता है। कुछ कहती हूँ तो धमकी देता है कि नाक काट लूँगा। मालकिन, मैं तो आज जा रही हूँ। लौटकर कभी नहीं आऊँगी।"

"गिरवर कहाँ है?"

"कस्बे चला गया।"

तब हेम सुमनसे बोली—"लो, तुमही इनका झगड़ा निबटा दो। वह कहता है कि यह खराब है, यह और कुछ कहती है। किसकी मानी जाय?"

सुमनकी समझमें बात नहीं आई। वह चुप रहा।

"अच्छा, आज चली जा। मैं उसे समझा दूँगी। महरीसे कपड़ा और खाना माँग ले। झगड़ा नहीं किया करते।"

जब वह चली गई, तब हेमने कहा—"बात कुछ नहीं है। यह ठहरी अपने पिताकी अकेली लड़की। मायकेमें स्वतन्त्र रहकर जिद्दी हो गई है। बस, बात-बातमें झगड़ा हो जाता है। वह भी इसकी खूब मरम्मत करता है। यह अक्सर मायके भागकर चली जाती है।"

ऐसे झगड़ोंका निपटारा सुमनके वशका नहीं था। वह भला यह सब क्या जाने? इतनेमें मुख्तार साहब आये।

"क्या है चाचाजी?" —हेमने कहा!

मुख्तार साहबने एक बार सुमनपर पूरी-भरी दृष्टि फेरी थी कि हेमने

बात सुलझा दी ——"हेम बाबू हैं। अपने मामाके घर..........।"

"हाँ, हाँ, कब आये ? पढ़ रहे हो ? मा अच्छी है ? उसकी तबियत अब कैसी रहती है ?" एक साथ कई प्रश्न उन्होंने पूछ डाले थे।

ठीक-ठीक नपे-तुले जवाबके बाद, बड़ी मुश्किलसे सुमनने पीछा छुड़ाया। तब हेम बोली —"उस मुकदमेंकी पेशी सबजजीमें कब है ?"

"कल। उसीके बारेमें पूछने आया हूँ। कैलाश बाबू पैरवी करेंगे। खुद मैं भी आज शामकी लारीसे चला जाऊँगा।"

"पूरा एक साल हो गया।"

"जायदादका झगड़ा ठहरा। अदालत और हुकाम जब चाहते हैं, पेशी लगा देते हैं "

"उस गांवकी छूटका क्या तय किया ?"

"सब मक्कार हैं। एक पैसा भी माफी नहीं दी जायगी।"

"गुमाश्ता तो कहता था कि फसल खराब हुई है।"

"वहाँ भी उनसे मिल गया है।"

"मैं वहाँ जाऊँगी।"

"वहां जाओगी ?"

खुद देख आऊँ। क्यों सुमन बाबू, गाँव चलोगे ?"

"हां-हां !" सुमन बोला।

"तब परसों हमारे जानेका इन्तजाम कर दो।"

"लेकिन, वहाँ तो..."

"क्या ?"

"पानी बरसा नहीं ? फिर गरमीका मौसम है। जरा पानी बरस जाय...."

"मुझे तो वहां जाना ही है। आज न सही, कल सही। एक बार सारा इलाका खुद देखे बिना भी तो काम नहीं चलनेका।"

हेमके हठके आगे कोई कुछ भी नहीं कह सकता था। बस, तीसरे दिन सुमन और हेम एक सुन्दर रथ (बैलगाड़ी) पर गांव पहुँचे थे। गाँवकी हालत देखकर सुमन अवाक् रह गया। उतनी नग्नता और गरीबीका खयाल उसे नहीं था। छोटी-छोटी झोपड़ियोंके कच्चे मकानोंका गाँव था। एक ओर जरा हटकर, जमींदारका पक्का मकान था। उसकी हालत भी गाँवकी हैसियतके साथ मैली हो रही थी। हेम और सुमन बाहर नीमके पेड़के नीचे चबूतरेपर बैठ गये थे। गांव-भरके बूढ़े अपनी मालकिनकी आवभगतमें लग गये। हेम उस सब व्यवहारसे परिचित थी; किन्तु सुमन अचरजमें पड़ गया था। वास्तवको जानकर भौचक्का-सा वह कुछ सोच ही रहा था कि हेम ने कहा था—"सुमन बाबू, देहात पसन्द आया?"

"पसन्द! चारों ओर गोबर-मौतकी महक अजीब छी-छी उसके मनके भीतर पैदा कर रही थी। यह धन्धा, यह कारोबार, जिससे वह परिचित नहीं था! एक ओर गुमाश्ता खड़ा था। उसका पहनावा गाँवकी गरीबीके विपरीत था। हेम मोटी धोती पहने थी। सुबह सुमनने तकरार की थी कि उसे सुन्दर सारीमें चलना चाहिये। तब हेमने मजाक किया था—"दुलहिनकी तरह वह ससुराल थोड़े ही जा रही है।"

इसका जवाब मिला—"एक-दो सालका और इन्तज़ार है।"

फिर हेम सतर्क हो गई थी। बाहर नौकर-चाकरोंको हुक्म देती समझा रही थी कि "तरकारी, आटा, चावल, सब कुछ जाय। साथमें बाबू के लिये चायका सब सामान भी।" पुरखिनकी तरह सब व्यवस्था उनको

सुझाकर बार-बार आगाह करती थी कि कोई चीज़ छूट न जाय। सब सामान जब एक बैलगाड़ीपर लद चुका था तब, साथकी नौकरानीको उसने हिदायत की थी कि बाबूके पहुँचते ही खाना तैयार रहे। नौकरोंको समझाया था—गाँववालोंसे कुछ नहीं लिया जाय। दस मील वह रथका सफ़र था। खूब मोटा मुलायम गद्दा डाला गया था। गाँवका कच्चा रास्ता बहुत कठिन होता है। धूप भी खूब लगती थी। सुमनकी 'बर्नार्ड शा' की मोटी किताबने साथ नहीं दिया। वह लाख पढ़नेकी कोशिश करता; पर पढ़ न पाता था। हचके लगते थे। तब हेम हँसकर कहती—"यह देहात है!"

सुमन कुछ भीतर कुढ़ जाता था। वह क्या नहीं जानता कि यह देहात है। बार-बार इस तरह सावधानी जताना भी ठीक नहीं लगा। हेम कहती—"व्यर्थ तुमको घसीट लाई! कहीं तबियत खराब न हो जाय।"

"तबियत नहीं खराब होगी।"

"बड़ा खराब रास्ता है। मुख्तार साहब तो इधर आनेका नाम नहीं लेते। आदमियोंसे सच्ची-झूठी खबरें सुनकर सही हाल मालूम नहीं हो सकता। इसीसे आना पड़ा।"

खैर, किसी तरह गाँव पहुँच गये। भूख काफ़ी लग आई थी। उधर हेम तो पंचायतके झगड़ोंको सुननेमें मशगूल हो गई। सुमन गुमाश्तेसे बोला—"नहानेका इन्तजाम हो गया?"

हेमने बात सुन ली। कहा—"अभी तो धूपमें चलकर आये हो। लू भी चल रही है। सुस्ताकर कुछ देरमें नहाना।"

सुमन चुप हो रहा। पर कहना तो चाहता था कि भूख तेज लग रही है। उतने आदमियोंके आगे कैसे कहता। हेम फिर भी ताड़ गई। सुस्त

चेहरा देखकर बोली—"भूख लगी होगी, नाश्ता कर लो। शरबत भी साथ होगा।"

गुमाश्ता बड़े अदबसे सुमनको भीतर ले गया। गाँवसे सामान माँग-मूँगकर कमरे सजाये गये थे। उस रुचिपर बार-बार सुमन हँस पड़ता था। नाश्ता शुरू करते हुए पूछा—"हेम नहीं खायगी ?"

"माजी ? अभी तो पूजा-पाठ होगा।"—महरीने कहा।

"पूजा-पाठ कब होगा ? दोपहर ढल चुकी है।"

इसका जवाब महरीने नहीं दिया। न सुमनको ही कुछ और सुननेका उत्साह बाकी था। नाश्ताकर, नेकर पहने ही वह पलंगपर लेट गया। बहुत थका था, सो गया।

कुछ देर बाद हेम कमरेमें आई। कहा—"सो गये ?"

"नहीं तो", सुमन कच्ची नींदमें आँखें मलते-मलते उठा।

"नहा लो, रसोई तैयार है।"

सुमन चुपके-से उठा और गुसलखाने जाकर नहा आया। खाना खा लिया। दिन-भर फिर वही भीड़। हेम गाँवकी औरतोंके बीच न जाने कितनी बातें कर रही थी। उसके पास भी कुछ लोग आ गये थे। वह क्या पूछे और जवाब दे ? हेम गाँवकी सारी बातोंसे वाकिफ थी। उसने इसीलिये आँखें मूँद लीं कि लोग खिसक जायँ। लोगोंके चले जानेपर उसने किताब पढ़नेकी कोशिश की। कई पन्ने उलटनेके बाद उसे बन्दकर दिया। बाहर हेमकी आवाज और हँसी साफ-साफ सुनाई पड़ रही थी। एक बार तो हेम भीतर भी आकर पूछ गई थी कि बुरा तो नहीं लग रहा है ? इस शिष्टता और आचारपर वह चुप रह जाता था। हेमके लिये

उसके दिलमें एक कोमल स्नेह है। उन दोनोंके बीचके इस अजीब समझौतेसे घरके सब लोग दंग रह जाते थे। जो हेम हमेशा उदास रहा करती थी, उसमें न-जाने एक बार फिर कहाँसे जीवन आ गया था। हेम खुद अन्तर भाँप रही थी। उसने इसपर फिर भी अधिक नहीं सोचा था। बेकार बात फैलाना वह नहीं चाहती थी।

—शामको सुमन अकेला ही खेतोंमें घूमने निकला था। कुछ भी वहाँ नहीं था। दूर तक खेत-ही-खेत—बिलकुल वीरान। वह निरुद्देश्य घूमता-फिरता रहा। कई बार उसने हेमके बारेमें भी सोचा। हेम उसे भली लगती थी, यह एक कठोर सत्य था कि वह उसे अब प्यार भी करने लग गया है। आज तक यह बात कभी महसूस नहीं हुई थी। अब वह अनजान नहीं रहा। यह हेम जब दुलहिन बनेगी, कैसी लगेगी? जीवनमें एकबार ब्याह होता है। वह अवसर काफी रंगीन लगता है, जो भविष्यमें हमेशा कोरे जीवनके बीच चमकता ही रहता है। उस दिन खिलौने-से दोनों लगते हैं और फिर बादको..........।

"बाबूजी!"

"क्या है रे?"

वही गुमाश्ता आ पहुँचा था। हाँफते हुए बोला—"आप तो बड़ी तेजीसे निकल आये। मैं ढूँढता ही रह गया।"

"मैं कोई कीमती चीज तो हूँ नहीं।"

"यहाँ भेड़िये ज्यादा हैं, अकेले दूर जाना ठीक नहीं। सामने ही तो जंगल है।"

अपने जीवनकी रक्षाका खयाल सुमनके आगे कम रहा है। आज तक

वह निडर होकर चला। अब क्या कोई डर था? वह घर लौट आया। बाहर मोढ़ेपर बैठकर, महरीसे पूछा—"हेम कहाँ है?"

"चौके में।"

"चौके में?"

"खाना बना रही हैं।"

"इतनी गरमी पड़ रही है!" कहता-कहता वह भीतर पहुँचा। देखा, हेम चुपचाप चूल्हेके पास पटरेपर बैठी हुई थी।

"यह क्या हो रहा है हेम?"

हेमने आँचल ठीक करते हुए कहा—"नौकर-चाकर कहाँ ठीक खाना बनाते हैं। बुआके हाथका तो रोज खाते हो। आज मेरे हाथकी भी बानगी देख लो।"

"तो दावत देनेकी ठहराई है।"

"जल्दी नहा लो। खाना तैयार है।"

यह सब व्यवस्था लड़कियाँ अनादि कालसे चलाती आ रही हैं। उसके लिए सुमनने तकरार नहीं बढ़ाई। कुछ देर बाद चुपचाप खाना खाने लग गया। खाना पकानेमें हेम इतनी उस्ताद होगी, यह उसे पहले नहीं मालूम था। वह धीरेसे बोला—"क्वीनी!"

हिचककर हेमने इधर-उधर देखा, कोई नहीं था। सारा चेहरा गुलाबी पड़ गया। उँगली होठोंपर रखकर इशारा किया कि चुप रहो।

सुमन भला कब चुप रहता। बोला—"सार्टिफिकेट मिलेगा।"

"अब पेट भर गया है। तुम्हारे लिये मैं एक इन्तजाम सोच रही हूँ।"

"क्या?"

"यहाँके मुखियाकी लड़कीसे शादी करवा दूँगी।" हेम खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"तो यह कहो कि दान देनेकी ठहराई है।"

"मैंने!"—हेम पीली पड़ गई।

देहातके उस जीवनमें सुमनने देखा कि हेमको तनिक भी घमण्ड नहीं है। वह सब कुछ कर सकती है। उसका एक सुन्दर ढाँचा उसके दिलमें बनने लग गया था। इस तरह पूरे दो महीनेकी छुट्टी काटकर एक दिन वह अपने मामाके घरसे कालिज चला गया था। वहाँसे उसने चिट्ठी भेजी थी और हेमने उसका जवाब दिया था। पहले साल लीचियोंका पारसल मिला। उसके बदलेमें सुमनने ढेर-सी किताब और चीजें हेमको भेजी थी। फिर दोनोंके बीच एकाएक चिट्ठीका सिलसिला बन्द हो गया था।

हेमके हृदयकी पीड़ा अब बहुत बढ़ गई थी। यह सारी जमींदारी ही सारे झगड़ोंकी जड़ थी। रोजही कुछ-न-कुछ लगा रहता था। जब एक दिन सुमनके मामा एक दस्तावेज लेकर पहुँचे कि हेमके पितापर उनका ऋण है, तब हेमकी समझमें कुछ भी न आया। उसके पिता इस बारेमें कुछ भी नहीं कह गये थे। यह महाशय हेमकी जायदाद हड़प लेना चाहते थे। हेम सब देनेको तैयार थी, किन्तु लोगोंने समझा-बुझाकर मुकदमा लड़नेके लिए उसे मजबूर किया था। तीन साल तक काफी अदालती दौड़-धूप और खर्चेके बाद हेम हार गयी थी। अब उसे सब लोगोंसे—मनुष्य मात्रसे—भारी घृणा हो गई थी। वह सबसे अलग रहना चाहती थी। सब एक-से उसे मिले। खुद उसका मुख्तार इस फरेबमें शामिल था। हमेशाके लिये गाँवसे जानेकी ठहरा चुकी थी।

हेमके रूखे बर्तावसे दुखी होकर सुमन नीचे बुआजीके पास पहुँचा। वह बोली—"बैठ जा सुमन!" फिर पुकारा—"हेम! ओ हेम!! सुमन आया है।"

हेम भीतर चटाईपर चुपचाप बैठी थी। कुछ नहीं बोली। भीतरी-ही-भीतर उसका मन उमड़ रहा था। बुआ भीतर जाकर बोली—"चल हेम। सुमनसे हमारा क्या झगड़ा है।"

यह सुनकर सुमन भीतर आ गया और आश्चर्यसे बोला—"कैसा झगड़ा हेम?"

"कुछ नहीं, यही जायदादका मामला था। तेरे मामाने अपने कर्जेमें सब इसकी जायदाद जीत ली है। यह मकान और थोड़ी जमीन रह गई है।"

हेम फिर भी कुछ नहीं बोली। अब सुमनने पास आकर प्यारसे पूछा—"क्या बात है हेम?"

हेमने कुछ जवाब नहीं दिया।

बुआने कहा—"और देख तो बेटा, गुस्सेके मारे वह अपने मामाके घर जा रही है। लाख वे बड़े हों, अपने घरकी इज्जत और ही है।"

इतनेमें महरी आकर बोली—"माजी, बैलगाड़ी आ गई। क्या-क्या सामान लदेगा?"

"तो पूरी तैयारी है!" कहता हुआ सुमन हैरतसे हेमकी ओर देखने लगा।

अब हेम उठी और सिर झुकाये ही बाहर चली गयी। बुआके पास जाकर बोली—"तुम यहीं रहो। मुझे तो जाना ही है।"

सुमनने सब सुना, पास पहुँचकर पूछा—"कहाँ जा रही हो हेम?"

"जहाँ मेरी मर्जी होगी। यहाँ एक मिनट भी रहना नहीं चाहती।"

"तब क्या मामाके घर जाकर.... .." आगे सुमन कह नहीं सका।

"मैं तो, समझाते-समझाते थक गई।"—बुआने कहा।

"बुआ, तुम अपनी बातें रहने दो। मेरा सिर झुक गया है। अब मेरे पास बाकी क्या बचा है? मैं भिखारिन हो गई हूँ।"

"हेम!"—सुमनने कहा।

हेम चुप!

फिर सुमनने पुकारा—"हेम!"

हेम उसी तरह चुप रही।

"तुम कहीं नहीं जा सकती हो।"

हेमने सुमनकी ओर आँखें उठाकर देखा। क्यों सुमन, उसे रोक रहा है? क्या वह रोक सकता है?

"तुम नहीं जा सकती। इस तरह यह हार नहीं हो सकती। कागजात कहाँ हैं? लाओ। अपने मामाके खिलाफ यह मुकदमा मैं फिरसे लड़ूँगा। तुम हार गई हो। मैं इस अन्यायके आगे सिर नहीं झुकाऊँगा।"

बुआने हेमसे पूछा—"क्या बात है?"

"मैनेजरको चार्ज देकर मैं जिम्मेदारीसे बरी हो गई बुआ।"—यह कहकर हेम हँस पड़ी।

सरोजको एक पत्र

प्रिय सरोज,

पत्र लिख भर देनेका अधिकार भी तो तुम अब छोड़नेपर तुली हो। तुम पत्र न लिखो, नहीं लिखो सही; पर बार-बार, लिख-लिखकर क्यों पूछती हो, कि अब नही लिखूंगी—अवकाश नहीं मिलता, बच्चेके मारे तंग हूँ, घरके काम-काजसे फुरसत कहाँ है? यही बहाना पाकर जैसे मुझे उबार लेनेकी व्यवस्था तुमने सोच ली है, मैं उस उत्तरदायित्वसे बरी ही कब था। न आज तक कोई आनाकानीवाला तकाजा ही मैंने पेश किया है। तुम भी तो इन सब बातोंसे परिचित हो ही।

ठीक, अपने जीवनमें एक अभाव होता है। जो कि हर वक्त दिलको कुरेदकर पीड़ा पहुँचाना जानता है। व्यक्तिका उपकार भी वही एक है। दिलकी उस भीतरी पीड़ाको अब किसीके साथ बाँटकर, कोई फायदा नहीं

होगा। फिर तुम तो बिलकुल अलग मेरे लिये हो। तुम्हारी यह चिट्ठी सारी पढ़ डाली कुछ उलझा। किन्तु समझसे तोलकर पाया कि ··· ?

और तुम यह क्या कर बैठीं! मुन्नाने सारी लिखी-लिखाई चिट्ठी बिगाड़ डाली थी, तो दूसरी ही लिख लेतीं! सारा पत्र, लिखा-अधलिखा, मिटे अक्षरोंका, एक ऐसा जाल लगा कि मैं असमंजसमें पड़ गया। यही तुम चाहती भी होगी।

लगता है, मुन्नाको आगे कर तुम अपनेको अलग रखना चाहती हो। फिर भी तो मुन्नाके पीछे छुपी तुम्हारी मुस्कान मैं पा जाता हूँ। मुन्नाको आगे रखना चाहो, रख लो। अपने घरपर ही मुन्नासे आगे तुम कब आई थीं? मुन्नाकी आड़में बिरानी बनी भर ही तो रहीं। याद है, जब मुन्ना सो गया था, तभी तुम भी चली गई थीं और फिर नहीं आईं, गो कह गई थीं कि, अभी-अभी मुन्नाको सुलाकर आती हूँ। जब दो घण्टे बाद आईं भी, तो मुन्ना फिर गोदीमें था····!

मुन्नाको पकड़कर, उस दिनकी तुम्हारी शरारत, कभी-कभी जीवनसे छिटक, अलग खड़ी हो, कुछ सुझाती लगती है। जरा हँसी भी आती है।

मुन्नासे तुमने पूछा था—'इन्हें क्या कहेगा?'

मुन्ना क्या कहता! कुछ जाने तब तो। वह अचकचा गया था। दो ही बातें उसने सीखी थीं—पापा और माँ। और वह कहता भी क्या!

और तुम उसके मुँहसे कुछ कहलाना क्यों चाहने लगी थीं। अपनी थिरकती अज्ञात खुशीमें भूल गईं, कि मुन्नाको कुछ कहना जरूरी नहीं है।

माना कि वह मजाक ही था। जीवनमें हरएक बातका भी कुछ महत्त्व होता है। लेकिन फिर·····?

तुम्हारा मुन्ना शायद ज्यादा समझदार था। वह चुप ही रहा। तुम फिर भी नहीं मानीं। उसके गालपर चुटकी काटते हुए पूछ बैठीं, 'बोल रे, इन्हे क्या कहेगा ?'

और जब कुछ कहनेके लिये उसने मुँह खोला, तो तुमने उसके ओठोंपर उङ्गली रख दी। वह चुप हो गया। 'पा' वह कहना चाहता था, कि तुमने हँसकर उसका मुँह, अपनी हथेलीसे दबा लिया था।

आज कहती हो, 'अब चिट्ठी नहीं लिखूँगी।' न लिखो, न सही; एक रेखा खींचकर इस तरह डराना क्यों चाहती हो ?

आखिर ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी थी जो अपनी चिट्ठीमें लिखा कि वह साड़ी क्यों भेजी और मुन्नाको खिलौने…? माना कि मेरे पास पैसे अधिक नहीं हैं। न आज एक चौथाई पैसे ही तुमसे माँगनेका मेरा हक है। और मनपसन्द चीजें भी मैं नहीं भेज सकता। लेकिन उस तरह तुम्हारा उपहास उड़ाना मुझे उचित नहीं लगा। अब तो तुममें कुछ भारीपन आ जाना चाहिये…।

और, सच कहना, आजसे पाँच साल पहले तुमने ऐसी ही साड़ी मुझसे नहीं मंगवाई थी। तुम्हारी एक-एक बात याद रखकर मैं चलता हूँ। पिछले महीने एक दिन दूकानपर पहुँचा। नये-नये 'डिजायनों' की साड़ियाँ सजी थीं उनको देख रहा था कि कुछ चलती-फिरती 'गुरगाबियाँ' उस दूकान पर कपड़े खरीदने आईं। एकाएक अपना अभाव अखरा, लेकिन उनमें एक बिलकुल तुम जैसी थी। तभी लगा कि तुम समीप हो। वैसे बोलनेका कौन-सा अधिकार पास था।

उस लड़कीने गुलाबी साड़ी खरीदी। तुम भी तो गुलाबी साड़ी पसंद

करती थीं न। तुम्हारे उस छरछरे, गोरे बदनकी स्मृति हरी हो आई। जब वह गुलाबी साड़ी पहन सकती है, तो तुम भी क्यों न पहन लो ? यही साड़ी खरीदनेकी बात है। फिर याद आया, तुम अकेली नहीं—मुन्ना भी साथ है। मुन्नाको कुछ भेजना जरूरी लगा। अटका था तुम्हारे स्वामी पर भी—वह व्यक्तित्व मैंने भुला डाला जैसे कि पहचानसे परे वह हों। क्या ऐसी ही साड़ीके न मिलनेपर तुम कभी बीते एक दिनको मुझसे नहीं रूठी थीं। वह रूठना और तुम्हारा गुस्सा फिर आँखोंके सन्मुख आया।

स्वामीकी गोदीमें अपनेको पाकर तुम अपनेको मुझे और दुनिया—तीनोंको भूल गईं। तुमने ही कोई गलती नहीं की। अपने दायरेको नाप, समझ लेनेमें सुविधा ही होती है। वैसे कभी-कभी तो उसकी चेतना दुःखद लगती है—एक अभाव और 'सूनी' वह बन जाती है। लेकिन तुम्हारे पास इतना अवकाश कहाँ है, जो उसे उभरनेका मौका मिल पाये ? मुन्ना है, घरका कामकाज है, 'वे' हैं, और और भी बहुत-सा, ढेर सारा काम है....।

और मैं ......?

अपने जीवन की दुरूहता मुझे ही पार करनी है। सब कुछ जीवनमें सिकुड़ा धरा है। दिल पर भारी गड्ढे पड़े हैं घाव वे नहीं, दुखते भी तो नहीं हैं। जीवनका अभाव अब भरपूरतामें ढल चुका है। उसीसे अपनेको बहला लेता हूँ। यह साधन किसी भी तरह मेरे हकमें बुरा नहीं है। अपना परखा ज्ञान ही अब अधिक धोखा नहीं दे पाता। कारण कि 'अप्राप्त' को उपाय मानकर आज चलना सीख गया हूँ।

कभी जी करता है, तुमको देख आऊँ। दो साल कट गये। अब

तो तुम बहुत बदल गई होगी। बचपनकी वह शोखी एक दिन छूट ही जाती है। उस दिनकी याद है, जरा 'फाउनटेन पेन' से, तुम्हारी साड़ीपर मजाक करते मैंने अपना नाम लिख दिया था, तो तुमने कितना हल्ला नहीं मचाया था। यदि उषा बार-बार नहीं कहती--'जीजी क्या बात है। तुम तो मोहनसे गुस्सा हो गई।' तो तुम्हारे दिमागका पारा उतरता नहीं। अपनी उस अनजान बहनके कथनपर तुम फिर पिघली थीं। उन दस्तखतों के बोझेवाले अहसानको आजतक दुनियाँ भरमें ढोता फिर रहा हूँ। आज अब न जाने कितनी तुनुकमिजाजी तुममें बाकी होगी?

अच्छा शादी की बात सुनो। तुमको लड़की ढूँढनेका भार सौंपा था। वही अधिकार अपना मान, तुम यह पूछना चाहती हो। मैं और विवाह? सोचकर डर जरूर जाता हूँ। न जाने मनमें यह बात क्यों नहीं जमती है। वहाँ टिकती भी तो नहीं! पत्नी तो भूल-भूलैयाँमें डाल देगी। एक सनकमें सोचता हूँ, शादी क्यों हो? भावुकतामें अक्सर किसी न किसी सुन्दर लड़कीपर आँखें गड़ जाती हैं। जैसे कि यह लड़कियाँ चाहें, मुझे उबार लेनेकी क्षमता उनमें है। अपनेमें जगह देकर, मेरा अपना अस्तित्व तक कुचल सकती हैं। लेकिन कमजोर साबित होना, आसान मौत है। इसीलिए विचार करता हूँ---शादी क्या एक जरूरत ही है!

पर एक बात बतलाना। तुम सब लड़कियोंका साधारण परिचय देकर खुद हट क्यों जाती हो। इतना सुझाकर भी, अपनी साफ राय क्यों नहीं दे देतीं। कहीं भी तुमने कुछ थोड़े ही कहा है। लड़कियोंका नाम गिना भर देना ही तो तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। यह उचित भी कब है। तुम अपनी स्पष्ट राय देकर यह क्यों नहीं कहतीं कि उस लड़कीसे शादी करो।

तुम मेरे योग्य लड़की खूब पहचान सकती हो। जब तुम मुझे भली-भाँति जानती हो, तब तुमसे गलती कैसे हो सकती है। और 'नौशा' वाले सारे दस्तूरोंसे मैं परिचित हूँ। तुम्हारी शादीमें मैंने एक-एक सामाजिक और धार्मिक बातें याद कर ली हैं। उन सबको भूलनेवाली बुद्धि मेरी नहीं है। लेकिन शायद अब तुममें यह साहस नहीं है कि मेरी शादीमें उत्साह लो। जानती हो न, कि मैं निपट लापरवाह आदमी हूँ। जिसे कभी भी अपनी जिम्मेदारी तकका खयाल नहीं रहता है। इसीलिए चुपचाप शादीकी बात बन्द किये देता हूँ।

तो पिछले दिनों तुम गाँव गई थीं। पाँच साल बाद ही तो तुम वहाँ गई हो। माताका पद पाकर, एक बार मायकेके देवी-देवताओंकी पूजा करनेका रिवाज चिर प्रचलित ही है। लेकिन वहाँ पहुँचकर सारा बचपन आगे आया होगा—गंगाके किनारेको छूती चौड़ी-चौड़ी चट्टानोंपर हम किस तरह कपड़े धोया करते थे। और रेतके मैदानवाले खेल? हाँ, हमारे आमके बागमें जो तूने तीन पेड़ लगाये थे, वे फल देने लगे हैं—यह तेरी चिट्ठीमें पढ़कर, जी करता है कि गाँवमें फिर डेरा डाला जावे। लेकिन तू हमारे उस बड़े मकानको उजड़ा देखकर रोई क्यों? उसे बनानेकी सामर्थ्य आज मुझमें नहीं है। यही तूने सोचा होगा। पर बात यह है कि मैं खुद वहाँ जाना नहीं चाहता हूँ। जब तुम वहाँसे चली आई माँने भी साथ छोड़ दिया। कोई भी तो अपना वहाँपर नहीं रह गया था। दो स्मृतियाँ अपने मस्तिष्कमें मड़राती हैं। पहली, एक दिन पिताको गाँवके मरघट तक ले जाना और दूसरी, फिर माँको भी वहीं पहुँचाया था। गाँव छोड़नेसे पहिले गंगासे लगे, उस मरघटमें, एक बड़े पत्थरपर बैठकर खूब

रोया था। तू भी तो वहां पास नहीं थी.......?

तेरी शादीकी याद भी नहीं आई थी। जीवन कितना विचित्र है! आज तू कितनी दूर है।

दिवालीका चार दीये भी तुमने मकानपर बाले, यह पढ़कर बड़ी हँसी आती है। और अपनी चाचीकी तुलसीकी मड़ैयापर जब तुम माथा टेके थीं, तो क्या मुन्ना तुम्हारी झोंटी खींचता नहीं कहता रहा—'चाची तलो।'

अजब सी तसवीर तुमने आगे रख दी?

तुम डरना नहीं। उस मकानको बेच नहीं रहा हूँ। अपने बाप-दादाकी वही यादगार तो मेरे पास है। नहीं तो अपना अस्तित्व गाँवसे मिटते क्या देर लगती है?

मैं जीवनमें चल ही रहा हूँ। कहीं अपने लिए रुकावट आज बरतना नहीं चाहता हूँ। वैसे कल अचानक तुम सबकी याद आ गई। साइकिल पर आफिससे लौट रहा था कि गलीके नुक्कड़पर बच्चोंको खेलते देखा। याद आया हमारा वह खेल—

मच्छी-मच्छी कितना पानी?
ये बिल्लैया इत्ता पानी!

और श्यामा भी आज हमारे बीच नहीं है। तू अब तो श्यामाकी यादमें नहीं रोती होगी। श्यामाकी जब भी याद आती है, तो जी भारी हो जाता है। श्यामाको मौतके बाद ही तो मुझे पाया था! अक्सर श्यामाको लेकर मैं माँ से झगड़ता था। कहता—"माँ तू श्यामाको मुझसे ज्यादा प्यार करती है; लड़कीपर तेरा अधिक मोह है।" माँ सिर्फ धुधकार दिया करती थी।

सरोजको एक पत्र

तूने भी तो श्यामाका पत्रमें जिक्र किया है। याद है, श्यामाके मर जाने पर तूने कहा था, "मैं ही श्यामा हूँ।"

कितनी सयानी बात तूने कही थी ?

—और आज लिखती है कि अब चिट्ठी नहीं लिखूँगी। न लिख, न सही ! मुझे भी अब तेरी चिट्ठी नहीं चाहिए !

तो मैं ही अब और क्यों लिखूँ ?

—"मोहन"

काली बाबू

कालीको अब दुनियाकी परवा नहीं है। वह कहीं भी टिक और और सकता है। आदमीके दुतकारने पर उसे लाज नहीं लगती है। न उसे अपना ही कोई खास खयाल है। पहले जिन बातोंको सुनकर, आत्म-सम्मानकी भावनासे उसकी आँखोंमें गुस्सा भर जाता था, अब वह सब कुछ भुला चुका है। उसे कोई गाली दे दे, अपनेमें ही गुनगुनाता खिसियाकर चला जायगा और दस-पन्द्रह कदम आगे बढ़ चुपकेसे कहेगा—"सुअर कहीं का।" फिर एकबार सोच-समझ, अपराधीकी तरह, वह अपने चारों ओर देख लेगा कि कोई सुन तो नहीं रहा है। इतना वह भी अभी नहीं भूला।

आजकल वह स्कूली लड़कोंके एक लाजमें बेकार पड़ा है। कुछ काम नहीं। एक बीड़ीका बंडल और माचिसकी डिबिया चाहिये। बस, दिन भर बीड़ी फूँका करता है। लाजसे बाहर कभी नहीं निकलता। वे सब लड़के

एक ढाबेमें खाना खाते हैं। काली भी वहीं उधार-खाते पर खाता है। आजकल तो उसे वहाँ जानेकी हिम्मत नहीं पड़ती, कि कहीं वह ढाबेवाला अपने पैसेका तक़ाजा न कर बैठे। और उससे भी ज्यादा डर है, पासकी सिगरेट-पानकी दुकानवालेका; उसने कालीको एक दिन ढाबेसे लौटते वक्त पकड़ लिया था। लुच्चोंकी तरह उसका हाथ पकड़, बोला था—"बाबूजी, पैसे दे दीजिये, नहीं तो... ?"

"कल मिल जायेंगे"—कालीने चुपकेसे समझाया।

"तीसरा महीना चल रहा है। अब कल-वल नहीं होगा बाबू! समझे ?"

कालीने बनावटी गुस्सेमें कहा—"अबे हम शरीफ आदमी हैं। कुछ समझता भी है ?"

लेकिन दूकानदार माननेवाला थोड़े ही था। कमीज पकड़ रहा, हल्ला मचाया—"बड़े शरीफजादे हैं। पैसा न देना पड़े, सड़क कतरा-कतराकर चलते हैं। ऐसी अकड़ है तो हिसाब साफ कर दो।"

एक बड़ी भीड़ जमा हो गई थी। मामला बढ़ते देख, कालीने शान्ति-पूर्वक, धीरज दिलाते कहा—"आज-कलमें मनीआर्डर आनेवाला है। सब हिसाब चुकता कर दूँगा।"

किसी तरह छुटकारा पा, काली जब 'लाज' पहुँचा, तो उसे अपनी दुर्दशा पर बहुत अफसोस हुआ। दूकानदारने तो उसकी कमीज तक फाड़ डाली थी। अपने मनमें उसने सोचा—"हरामजादेका एक दिन खून कर दूँगा। क्या होगा, फाँसी! मुझे अब कोई भी डर नहीं है। साला, सरेआम पैसे माँगता था, जैसे मैं उसकी रकम मार ही लूँगा। मुझे बेईमान समझता है। अक्ल ठिकाने कर दूँगा—करता फिरेगा चीं-चपड़!"

ईमानदार बननेकी हवस कैसे पूरी हो ! पैसा होता तो वह मुँहपर टपक, हजारों गालियाँ और धमकियाँ जाकर सुनाता। वह रास्ता अब हमेशाके लिये बन्द हो चुका था। साथ ही ढाबेमें भी खाना खाने वह नहीं जा सकता। भूखा पड़ा रहना उसे मंजूर है। अपनी तौहीन अधिक नहीं देखी जाती। बस, वह लौटकर पड़ रहा। जब स्कूलसे लड़के चले आये तो वह एकसे बोला—"मिस्टर, एक बीड़ी होगी !"

बीड़ी मिल गई, उसने सुलगा ली। मनमें ही तमाम आदमियोंको मार-नेकी बात सोचता रहा। सब एकसे हैं, कोई किसीका भी एतबार नहीं करता। नहीं जानते, कालीको आज न सही, कल तो नौकरी मिल हो जायगी। तब अपनी तनख्वाहसे वह सबका हिसाब चुका देगा। काली कोई साधारण दर्जेका मजदूर थोड़े ही है। वह मैट्रिक पास है। उसने प्रथमश्रेणीमें मैट्रिक पास किया था। उससे भी नालायक लड़के आज अच्छे-अच्छे ओहदोंपर हैं। उसे किसीने नहीं पूछा। उसके आगे ढोल बजा-बजाकर, रास्ता बताने-वाला कोई नहीं था। उसे ठीक मौका और अवसर नहीं मिला। उसने ठोकरें खा-खाकर दुनियाका रास्ता टटोला था। छोटी उम्रसे ही वह ट्यूशनों पर गुजारा करनेको मजबूर हो गया था।

लड़कोंके इम्तहान हो गये। सब एक-एककर जा रहे हैं। वे थोड़ा पैसा—जेब-खर्चके लिये उसे देते थे। दो महीने अब ८ भी नहीं मिलेगा। लेकिन वह कहीं नहीं जायगा। यहीं पड़ा रहेगा। एक खुला गुसलखाना है और एक कोठरी। बहुत जगह है। दिनको गुसलखाना ठढा रहता है। रातको वह कोठरीमें ही पड़ रहा करेगा। किसी तरह दिन तो काटने ही हैं। कहीं नहीं जायगा। नहीं, नहीं जायगा। दुनिया भरके आदमियोंसे

उसे नफरत हो गई है। वह किसीका मुँह देखना नहीं चाहता, सब एक ही से हैं। किसीको उसकी फिक्र नहीं है। वह भी किसीका मुँह देखना पसन्द नहीं करता। न किसीके आगे अब वह हाथ पसारेगा। वह उन बदमाशोंको खूब फटकारना भी चाहता है। वे दुनियाको लूट रहे हैं। सब ससुरे सभ्य हैं, और असभ्य है केवल काली—वह बेकार जो है! उसके पास पैसा नहीं, रहनेको घर नहीं, खाना भी नसीब नहीं होता। वह पानी पी-पीकर अपना गुजारा करेगा और लाजसे बाहर जानेका कभी नाम भी न लेगा।

लड़कोंने जानेसे पहले कालीको कुछ पैसे दिये थे। तीन दिन तक काली उन पैसोंको गिनता रहा। भारी आलस्य और अपमानकी वजहसे उसे लाजसे बाहर जानेका उत्साह नहीं रहा। भूखा वहीं का वहीं पड़ा रहा। वह उन पैसोंसे ऐसी तदबीर निकालना चाहता था कि एक बड़ा आदमी बन सके। कालीको याद आया, कि बचपनमें एक सेठजीने उसे बड़ी-बड़ी उम्मीदें बँधाई थीं। फिर वहाँ ही क्यों नहीं चला जाय? शायद वे कहीं कालीको ठिका-नेसे लगा दें। सेठजी बड़े दयालु थे। उनके कई प्याऊ थे, धर्मशालायें थीं। रोज उनके दरवाजेपर हजारों फकीर जीमते थे। स्कूलके एक जल्सेमें वे आये थे। हेडमास्टर साहबने कालीकी तारीफकी थी। सेठजीने उससे हाथ मिलाकर, समय पर सहायता देनेका वचन दिया था। सेठजीके कई मिलें हैं, कारखाने हैं। भारी धीरज उसे हुआ। उसने पैसे गिने, लारीके किरायेके लिये पूरे थे। फिर गिने, बीड़ी और माचिसके लिये तीन पैसे बच जाते थे। चौथे दिन वह ग्यारह बजे 'लारी स्टैण्ड' पर पहुँचा। मईकी दुपह-रिया, कालीने तीन रोजसे खाना नहीं खाया था। लू, गरम हवाके झोंके, बीच-बीचमें धूल उड़ा, लारीको ढक लेते थे। वह बार-बार गरदनके पीछेवाली

हड्डीको हाथसे टटोलता जाता था कि कहीं वह पिघल तो नहीं गई है। नाक, मुँह, आँख, सब गरम हवासे झुलस चुके थे। अब कालीने समझा कि हिन्दुस्तान बहुत गरम देश है। फिर भी वहाँ किसान काम करते हैं। अपनी कोई हिफाजतकी चाह भी उसे नहीं थी। समझ लिया कि लू लग जायगी—वह मरेगा।

लारीसे चालीस मीलका सफ़र तयकर, वह सेठजीके बंगले पर पहुँचा। एक नेपाली सिपाही बन्दूक लिये पहरा दे रहा था। चारों ओर खसकी टट्टियाँ लगी थीं। नौकर उनपर पानी छिड़क रहे थे। वह बाहर बैठा रहा। भूख लगी थी, प्यास भी। उसने नलसे खूब पानी पिया और बाहर चबूतरे पर नीमके पेड़के नीचे बैठ गया।

लेकिन कालीको नौकरी नहीं मिली। सेठजीको वह पुरानी बात याद नहीं रह गई थी। वह उसे पहचान नहीं सके। उसने बेकार बहुत याद दिलानेकी कोशिश की। उनके पास रोज हजारों आदमी आते हैं। उसने फिर कहा कि वह अपने सब पैसे खतमकर, एक आखिरी आशासे आया है। सेठजी नहीं पिघले। मुनीमजीने चार आने पैसे फेंकते हुए कहा—"भाग जाओ बाबू।"

काली कैसे समझ लेता कि नौकरी नहीं है। नहीं है, तो क्या वह जिन्दगी भर, इसी तरह मारा-मारा फिरेगा? नहीं! नहीं!! सेठजी नौकरी दे सकते हैं। उनको देनी चाहिये। वे चार आने पैसे वहीं फर्शपर पड़े रहे। उसने एक बार उनको देखकर भारी शब्दोंमें कहा—"सेठजी।"

तब सेठजी अपने नये 'मिलिटरी' के ठेकेकी बातें कर रहे थे। वह चुपचाप सुनता रहा। फिर सेठजीने अपने नये ठेकेकी भीतरी छिपी करतूतों

का बखान किया। उनके कहनेके ढंगके भीतर एक भारी व्यंग था। हजारों रुपयोंका वह ठेका सेठजीने लिया है। शायद उसीके लिये चार आने पैसे दान करते उनको कुछ भी हिचक नहीं हुई। सेठजी सुना रहे थे, चर्चा चालू थी—कितना रुपया साहबको भेंट करना पड़ा, कितना बाबू लोगोंको। काम निकालनेके लिये कितना झूठ बोलना पड़ता है और कितना धोखा देना जरूरी है। सब कुछ सुनाते-सुनाते बीच-बीचमें वह हँसते थे।

सुन्दर रेशमी अँगोछा पहने एक साधु ताँगेसे उतरे। हाथमें भीख माँगनेका काला कमण्डलु था। उसकी मूँठ सफेद हाथी दाँतकी बनी हुई थी। खूब मोटे, ताजे और तगड़े थे। सेठजी उनको देखकर उठे, चरणोंकी धूल लेते हुये बोले—आइये महाराज। बहुत दिनोंमें दर्शन दिये।

स्वामीजी बैठ गये। कालीने महात्माजी पर एक निगाह डाली। एक बड़ा हवन होनेवाला था। सेठजीने मुनीमसे पचास रुपये देनेको कहा। मुनीमजीने दस-दस रुपयेके पाँच नोट दे दिये।

कालीने सोचा, एक आदमी भूखों मर रहा है। उसका कोई सहारा नहीं। और दूसरा.......। सारा धर्म-कर्म व्यर्थ लगा। फिर उसने निश्चय किया कि वह भी फकीर बनेगा। यह तरकीब ठीक है। फिर स्वामी और महात्मा बनते देर नहीं लगेगी। दुनिया उसकी पूजा करेगी। वह भी भण्डारा खोलेगा और दुनिया भरके रईसोंको इसी तरह लूटेगा। उसने सेठजी की ओर एक क्रूर दृष्टि डाली, चला आया। रास्तेमें कहा—धोखेबाज! पाजी !!

अब काली क्या करेगा। पढ़-लिखकर उसने क्या पाया ? वह एक दल स्थापितकर, लूट-मार मचा, सब रुपया इन अर्थ-पिशाचोंसे छीन लेगा।

अपने-जैसे बेकारोंको जमा करेगा। यह आखिरी जरिया है। जेल होगी, जेल जायगा। वहाँ भोजन-वस्त्र तो कमसे-कम बँधा हुआ मिलता है। उसका वह दल देश भरसे फैल, काम करेगा। सबको रोटी मिलेगी और उनके रोज़गारका इन्तजाम किया जायगा। यह मौजूदा सरकार तो कुछ भी नहीं कर पा रही है। वह स्वस्थ वातावरण फैलाकर, सारे इस विद्रोहको अलग हटानेकी कोशिश करेगा। तब किसीको भी इतनी कठिनाइयाँ नहीं रह जायँगी। फिर सोचा, पागल कहींका! एक पैसा पास नहीं, सोनेका ठिकाना नहीं, खाना तीन रोजसे नसीब नहीं, और मैं बनूँगा दलका नेता! बिना खाने-पीये उस दलका संचालन होगा! हा-हा-हा! वह ठहाका मार कर हँस पड़ा। अपनी इस बेवकूफी पर उसे खूब हँसी आई।

इतनेमें पीछेसे किसीने कहा—"बाबू, अन्धे हो क्या?"

एक इक्का पाससे गुजरकर आगे बढ़ गया। कालीने आँखे-फाड़ चारों ओर देखा! सब कुछ साफ-साफ वह देख रहा था। वह अन्धा तो नहीं है। यह एक झूठा सन्देह इक्केवालेने उसके मनमें पैदा कर दिया था। नहीं, वह अन्धा है, अपाहिज है, पंगु है। कारण, उसके पास पैसा नहीं, वह जरूर अन्धा है। आँखवालोंके पास बड़ा मकान, बैंकमें हिसाब और मोटर होती है। उसके पास तो कानी कौड़ी भी नहीं है। अच्छा, तो भूख फिर क्यों लगती है? कितनाही पेटको वह समझाता है कि फिल-हाल कोई भी ठीक-सा इन्तजाम नहीं होनेका। पर वह लाइलाज मर्ज है। कितना ही समाधान क्यों न कर ले, भूख बढ़ती ही जाती है। पास पानी का नल था। सोचा, पेट इसीसे भरा जाय। और नलके पास कुछ खाना भी तो पड़ा है। पर जूठन वह नहीं खायगा। पानी पी सकता है। पानी उसने

खूब पी लिया। पेटको हिला-हिलाकर अन्दाज लगाया कि मशककी तरह वह कितना भर गया है।

चारों ओर कोठियाँही कोठियाँ थीं। वह चला जा रहा था। कोठियोंमें किसीके बाहर लिखा था 'वाटिका', किसीके बाहर 'कुञ्ज' और किसी-किसीके बाहर अफ़सरानके नामोंकी तख्तियाँ लटकी हुई थीं। एक पर उसकी आँखें अटकीं। पढ़ा—काशीनाथ अग्रवाल।

तो यह वही मैट्रिकमें उसके साथ पढ़नेवाला काशीनाथ तो नहीं है। बहुत बड़ी उम्मेद हो आई। वह दौड़ा-दौड़ा भीतर पहुँचा। तपाकसे एक लड़केसे पूछा—"खुर्जावाला काशीनाथ यहीं रहता है?"

उसकी बड़ी दाढ़ी, अजीब सूरत और पहनावा देखकर, लड़का भागा-भागा बैडमिंटन कोर्टमें पहुँचा। हाँफता हुआ बोला—"ममी फाटकके भीतर एक पागल घुस गया है।"

कालीने देखा, दो युवतियाँ और एक मर्द खेल रहे थे। वह आदमी वही स्कूलवाला काशीनाथ था। ठीक उसने पहचान लिया था। तपाकसे आगे बढ़कर वह बोला—"अबे काशी, क्या ठाठ हो रहे हैं?"

इतनेमें मालीने उसकी गरदन पकड़ ली और फाटकके बाहर निकाल दिया। दूर ढकेलता हुआ बोला—"बदमाश, चोरी करने आया था।"

कालीने सोचा, वह इसका भी एक दिन खून करेगा। क्या होगा, फाँसी। वह मरनेको तैयार है। सबका एक साथ खून करेगा। वह बदमाश है और सारी दुनियाँ शरीफ। वह सब शरीफोंको नेस्तनाबूद कर देगा। उसकी आँखोंके आगे अँधेरा छाने लगा। एक नीमके पेड़के सहारे वह खड़ा हुआ आपही आप बड़बड़ाता रहा—सब साले 'इडियट' हैं। मुझे नहीं पहचानते।

खयाल आया कि उसे अपने शहर पहुँचना है। बीड़ीकी तलब उठी। एक ओर 'फुटपाथ' पर पड़ी बीड़ी उसने उठा ली। सुलगावे कैसे? सामने एक साहब साइकिल पर जा रहे थे। वह जोरसे बोला--'ओ मिस्टर, माचिस होगी?'

वे भले आदमी काली बाबूके लिये दियासलाईकी डिबिया फेंक, अपना पीछा छुड़ाकर भागे। अब उसने इतमीनानसे बीड़ी सुलगा ली। फूंकता हुआ बोला—'हम क्या लाट साहबसे कम हैं। सीना खोलकर, अकड़-अकड़ कर चलने लगा।

आगे उसने देखा—बहुतसे भिखारी भीख माँग रहे थे। कोई एक टाँग उठाये, किसीने आँखें मूँद ली थीं। कोई भगवानके नामपर आशीर्वाद देता पैसेके लिये हाथ पसारे था। अजीब-अजीब स्वाँग देखकर काली बाबूको बड़ी हँसी आई। उसने सोचा—ये सब साले अभागे हैं। गरीब हैं। इसी तरह गुजारा करते हैं। भले आदमी भीख नहीं माँगते। ये सब हैं—लुच्चे! डाकू!! दुनियाको ठग रहे हैं। इनसे क्या मजदूरी नहीं हो सकती?

आगे बढ़ वह लारीमें चढ़ा। अपने शहर पहुँचना जरूरी है। दूसरों अनजानोंका यह शहर उसे अच्छा नहीं लगा। यहाँ काली बाबूको कोई नहीं जानता! उसके शहरके बच्चे-बच्चे उसे पहचानते हैं। लारी चल रही थी। शाम हो गई। वह सो गया था।

"मिस्टर!"

कालीने आँखें खोलीं।

"किराया।"

"हमारे पास एक पैसा भी नहीं है।"—झुँझलाकर वह बोला।

"तब चढ़े क्यों थे ?"

"हमारे मनकी बात थी। ले अब उतरे जाते हैं, तू भले आदमियोंकी इज्जत करना तक नहीं जानता।" काली बाबू उतर पड़े।

लारीवालेने हाथ पकड़कर कहा—"पुलीस देखी है ?"

कालीको चढ़ा गुस्सा। कहा—"साले तेरे बापकी लारी है, जो इतना इतरा रहा है।"

कुछ भी वसूल होनेकी उम्मेद न होनेपर, चार धौल काली बाबूके रसीद कर वह चला गया। काली आगे बढ़ा। चुङ्गीके पास वह उतारा गया था। शहर एक मील दूर था। वह तेज चालसे आगे बढ़ने लगा। फिर दौड़ता-दौड़ता शहर पहुँचा। अपने पानवालेकी दूकान पर आकर बोला—"एक 'पासिंग शो' सिगरेट देना।"

दूकानपर नौकर बैठा हुआ था। उसने सिगरेट दी। इतमीनानसे उसे सुलगाकर वह बोला—"काली बाबूके हिसाबमें लिखवा देना।"

धीरे-धीरे सिगरेट फूँकता-फूँकता वह ढाबेमें पहुँचा। नौकरने पूछा—"आज बहुत दिनोंमें आये ?"

"बाहर नौकरीकी तलाशमें गया था।"

"मिल गई ?"

"खाना लाओ। बातें फिर करना।"

सिलसिलेवार घटनाएँ

“आ पत्ताबीड़ी”, कह, रामूने चकमक पत्थर झाड़ा और कपास जला कर उसपर रख दी, अब तम्बाकू पीने लगा।

इतनेमें बाहर एक किलकारी सुनाई पड़ी।

“रामू! रामू!!” किशोर बोला।

“क्यों, क्या बात है?”

“तूने नहीं सुना!”

“होगा भी। बाहर कितनी तेज़ हवा चल रही है। कोई भी अजनबी स्वर सुनाई दे, तो आश्चर्य क्यों हो रहा है!”

“नहीं रामू! हमारे पहाड़का जो विश्वास है, वह सही ही है। अन्यथा आदमीकी सामर्थ्यके बाहर ऐसा स्वर! जरूर कोई देवी होगी।”

“तब पूजा करने बाहर क्यों नहीं चला जाता है!”

बाहर बैलोंके गलोंकी घंटियाँ बज उठीं। गाय भी रंभा रही थी।

"कोई जंगली जानवर आया है, वर्ना पशु चौकन्ने नहीं होते। चल बाहर देख आवें।" कह रामूने सिरहानेसे टार्च निकाली, पत्तोंका बना खूब चौड़ा छाता उठाया और ओढ़कर दोनों बाहर निकले।

बाहर खूब पानी बरस रहा था। बरसात और फिर पहाड़ की! मूसलाधार वर्षा थी। बिजली बीचमें जरा चमकती और भारी शब्द होता, जो गूँज-गूँज उठता था। बिजलीकी रेखाकी रोशनीमें एक बार सामने पहाड़पर चिट्टी रोशनी पड़ती दिखाई दी। आस-पास जंगलमें पेड़ भी दीख पड़े।

"देख मैंने कहा था। दस बकरी एक साथ मार गया। इस बघेरेके मारे आफत है। उठा ले चल अन्दर इनको" रामू बोला। फिर दोनोंने मरी बकरियाँ अन्दर सँभाली।

"लेकिन दादा!"

"क्या है?"

"एक बकरी और भी तो कम मालूम होती है, शायद साथ ले गया होगा।"

"ले जाने दे। खा लेगा, कहाँ अब ढूंढ़ें।"

अपनी झोपड़ीके भीतर वे पहुँच गये। बड़े-बड़े पत्तोंके छप्परोंका बना, यह तम्बूनुमा डेरा है। इसे इधर-उधर खेतोंमें ले जानेमें कोई भी दिक्कत नहीं होती है। ऊँचे-नीचे खेतोंकी वजहसे, खेतोंमें ही गाय बाँधनेका रिवाज पहाड़ोंमें है। इससे गोबर फैलानेमें सहूलियत हो जाती है। अलग-अलग खेतोंमें बारी-बारीसे गायें बाँधी जाती हैं।

"परसों ही पन्द्रह बकरी मार गया।" किशोर कहने लगा।

"अपना अपना शिकार है।"

"आज यह पानी ! मालूम होता है कि प्रलय होगा।

कड़—कड़—कड़······फिर एक भारी आवाज और सन्नाटा।

"कहीं वज्र गिरा है।" रामू बोला।

"मेरा दिल तो डूब रहा है।"

"क्या ?"

"डर न जाने क्यों लगने लगा।"

"तेरी शादीका इन्तजाम अबके जाड़ोंमें करना है। यह दिल डूबने।। रोग अपने ही आप भाग जायेगा।"

"और तुम दादा ?"

"सोच रहा होगा कि पाहुना बनकर चलेगा।"

"ठीक तो है बात !"

"तब शादी जरूर करूँगा। अरे तू तो काँप रहा है। बड़ा डरपोक है। क्यों आया था। मैं तो वहीं मना कर रहा था। घरमें पड़ा रहता।"

"मैं डरपोक·······।"

"हाँ हाँ !"

"डरपोक मैं रामू !"

"हाँ-हाँ; झूठ बात क्या है।"

"तब तू ही सच्चा है। इस टीलेके उस पार तो······"

"तुझे क्या हो गया है !"

"तुमको सुबोधकी माँ की याद है ?"

"शायद वह हैजासे मरी थी।"

फिर बाहर एक भारी किलकारी हुई। किशोर थर-थर काँपने लगा।

"किशोर !"

"ओ रामू ! ओ रामू !! कोई अनर्थ होगा।"

"यही तुझे बकना है।"

"उस साल भी ऐसी ही किलकारियाँ सुनाई पड़ी थीं। सुबोधकी माँ संध्याके झुटपुटेमें घास लेकर लौट रही थी। उसने देखा था कि सुन्दर लाल साड़ी और रंगीन चूड़ियाँ पहने एक लड़की आगे बटियाने बैठी थी। उस खूबसूरत अकेली लड़कीसे वह बोली थी—कौन है तू, "किसकी लड़की'। और वह लड़की ओझल हो गई।"

"ओझल हो गई !"

"हाँ, हाँ, फिर रास्तेसे ही सुबोधकी माँके पेटमें बड़ी पीड़ा शुरू हुई, घर पहुँचते-पहुँचते वह काहिल होगई, तीन दस्त हुए और कई कै भी। घरके अलावा किसीको भी उसकी यह हालत नहीं मालूम हो पाई। ऐसी बातें बाहर कहते लोग डरते हैं, फिर भी आधी रातको सुबोध मेरे पास आया। सब सुनकर मैंने कुछ गोलियाँ और क्लोरोडीनकी शीशी ले ली। वहाँ पहुँ-चकर देखा कि वह पीली पड़ गई थी। नाड़ी देखी—लापता, बड़ी हिम्मत करके हमने, चम्मच डालकर उसके जकड़े दाँत खोले और चन्द बूँदें दवाकी डालीं। लेकिन दाँत खुलेके खुले ही रह गये। वह बड़ा ही भयानक नजारा था। तभी बाहर दालानमें एक किलकारी सुनाई दी और उसने आखरी हिचकी के साथ प्राण छोड़ दिये थे।"

"किशोर।"

"सच-सच, सब बात है। वह मर गई थी। बड़े सुबह अँधियारे ही

लोग उसे गाड़ने ले गये थे। बीरू भी साथ-साथ उन लोगोंके पीछे था। बीरूने एक ओर देखा—वही लड़की बकरीका पेट चीरकर उसकी आँतोंसे खेल रही थी। किसीसे कहनेकी हिम्मत उसकी नहीं पड़ी।"

"क्या किशोर ?"

"दादा, वह हैजाकी देवी थी।"

"किशोर, यदि दुनियाके आगे यह बातें कह दे, तो किसी पागलखानेकी हवा......।"

"ठीक बात है रामू, सभ्यताका इन बातोंसे वास्ता नहीं है, इसीलिये तो, लेकिन...।"

"कुछ और बात भी है।"

"हाँ, उसी रातको बीरू अपने मकानके निचले मंजिलके एक कमरेमें अकेला सोया हुआ था। इतनेमें किसीने बाहरसे दरवाजा खटखटाया। उसकी आँखें खुली, पुकारा—'कौन !' कोई जवाब नहीं मिला। फिर कुछ देरके बाद दरवाजेपर खटखटाहट हुई और एक वीभत्स हँसी कोई हँसा। खिड़की खोलकर बाहर देखा—सुबोधकी माँ, खड़ी उसे बुला रही थी।"

"सुबोधकी माँ !" आश्चर्यमें रामू बोला।

"वह उसे बुलाने आई थी।"

"बुलाने ?"

"दिनको बीरू भी हैजेसे मर गया, यह सब बात उसने मुझसे कही थी।"

"तुमसे कही !"

"उस साल गाँवमें तुम भी होते तो मालूम पड़ जाता, इन दो घटनाओं-

के बाद पाँच और मौतें हुई थीं। बस हम सब लोग गाँव छोड़कर भाग गये थे। और जानते हो सबके सब मुर्दे कहाँ गाड़े गये हैं ?"

रामूने किशोरकी ओर देखा।

"वहीं, टीलेके उस पार मैदानमें।"

कुछ देर तक दोनोंके दोनों चुप रहे, वही बरसात ; पानी-पानी-पानी। बीच-बीचमें हवाकी भारी आवाज़ सुनाई पड़ती थी। कभी-कभी लगता कि कुछ आहट-सी बाहर होती है।

"सो गया रामू ?"

"नहीं किशोर।"

"डर मुझे भी लगने लगा है क्या ?"

"नहीं तो, और कुछ सुनावेगा, क्यों ? तेरे क़िस्से दिलचस्प होते हैं। कहनेका ठीक-सा ढंग भी तू सीख गया है।"

"वह मैदान.........।" कहकर किशोर चुप हो गया। लालटेनकी बत्ती उसने बढ़ा ली। कहना शुरू किया, "यदि क़िस्से होते तो रामू ठीक था। जानता है, अकाल मृत्युके बाद आदमीको मुक्ति नहीं मिलती है।"

"अब तो लगा तू दर्शन-शास्त्र छाँटने।"

"अरे नहीं-नहीं, बात ही कुछ ऐसी है, मन-बुझाव नहीं होता। ऐसा भूत पर तू विश्वास करता है ?"

"मैं !"

"हाँ, तू, तू ! बड़ा जिन्दादिल जो है।"

"आखिर बात क्या है। जो इतनी डाट रहा है ?"

"कोई बड़ी बात नहीं। उन घटनाओंके बाद धीरे-धीरे गाँव बसने लग

गया था। कोई भी डर लोगोंको नहीं रहा, लेकिन एक दिन—"

"क्या हुआ क्या, कहो।"

"एक दिन ज्ञानूकी बहू अपनी साससे झगड़कर, रातको ही मायकेके लिए चुपके रवाना हो गई, जाड़ेके दिन थे। चाँदनी रात थी। इस झाम-नेवाली चोटीके उस पार ही तो उसके पिताका गाँव है। इस रास्तेसे वह आ रही थी कि उसने देखा, सामने उस चौड़े मैदान पर दो आदमी सफेद कपड़े पहने, घोड़ोंपर सवार थे। वे पहाड़की चोटीकी ओर इशारा कर रहे थे। वह भागकर घर लौट आई, और बेहोश पड़ी रही।"

"ठीक ही हुआ। दिलमें डर समा गया होगा?"

"नहीं रामू, बात कुछ और ही हुई। उसे झपेटा लग गया था। यह ज्ञानूकी दूसरी शादी है न! उसकी पहली बहू हैजेमें मर गई थी। अब भूत बनी टीलेके पास रहती है। टीलेसे लगा ज्ञानूका जो खेत है, उसकी दीवाल यदि दिनको ज्ञानूकी बहू ठीक करती है तो वह रातको उजाड़ देती है। घरका कोई दूसरा आदमी बनाता है तो कुछ नहीं होता।"

"वह ठीक नहीं बनाती होगी!"

"फिर अपनी ही बात कहोगे न! वह तो बेहोश ज्ञानूकी बहू पर भूत बनकर उस दिन चिपट गई थी। बेहोश ज्ञानूकी बहूके भीतरसे बोली थी—'इसे उस खेतमें भेजोगे, तो मैं खा डालूँगी। मेरे गहने कपड़े इसे क्यों दिये गये? माँग लो।' लोगोंने यही किया, फिर वह कभी नहीं आई।"

"हँसीकी बात यह है।"

"और दादा, एक रात वैद्यजीका दरवाज़ा किसीने खटखटाया! कोई

आदमी उनको बुलानेको आया था। वैद्यजी बहुत निडर आदमी हैं। पास ही गाँवमें मरीज देखने जाना था। साथ हो लिये, अँधियारी रात थी। और इस सामनेवाले मैदानमें पहुँचे तो देखा कि एक कचहरी आदमियोंकी लगी थी। सब सफेद कपड़ोंमें थे। एक आदमी ऊँचे पत्थर पर बैठा था और सब लोग नीचे। सरदार बोला—'यह आदमी नहीं चाहिए।' वैद्यजी लौट गये। किन्तु दूसरे दिन सुना कि दूसरे गाँवके वैद्यजी मर गये हैं।"

"तेरी बातें तो समझमें नहीं आतीं किशोर!"

"विश्वास, मैं तो इसे मानता हूँ। मुझे वह दिन खूब याद है। मैं और सुशीला छोटे थे। मैं सात सालका और वह पाँचकी। माँ रसोईमें ही थी। खा-पीकर हम दोनों सो रहे थे। अँधियारा था, तभी किसीने मेरी छाती पर अपना हाथ रख दिया। मैं कुछ भी नहीं समझा। कोई कह रहा था—इसे ले जाऊँ या उसे। आखिर वह बोला—'उसे ही ले जाता हूँ।' कुछ देर बाद माँ दूध पिलाने आई थी, सुशीला मरी मिली।"

"सुशीला मर गई थी!" आश्चर्यसे रामू बोला।

"यह तो मेरी अपनी जिन्दगी की बातें हैं। जब किसनको चेचक निकली, मैं उस रात अपने छज्जेमें पेशाब कर रहा था। मैंने देखा कि किसन के दालानमें कोई औरत सुन्दर कपड़े पहने खड़ी थी, अगली सुबह सुना कि किसन मर गया।"

"क्या?"

"तुम सच मानो या झूठ। वह माता थी।"

फिर बाहर किलकारी सुनाई पड़ी।

"रामू-रामू!" किशोर चिल्लाया।

"फिर....?"

किशोर बहुत डर गया था। चुप रहा।

"किशोर!"

"क्या बज गया होगा रामू?"

"अँधियारा है। कुछ अन्दाज भी तो नहीं लग सकता।"

"जान पड़ता है पानी थम गया।"

"शायद...।"

घु—घू—घू—घु—घू—घू!!

"वह उल्लू बोल रहा है।"

"बोलने भी दो, हमें क्या मतलब।"

"प्यूँ—! प्यूँ!! प्यूँ!!!

"रामू!"

"क्या है?"

"तुमने सुना।"

"कोई पक्षी बोल रहा है। बोलने दो मेरे मना करने पर तो वह माना नहीं जावेगा।"

"बड़ा बहादुर है तू!"

"सुन फिर एक बात।"

"क्या रामू?"

"चल भूत देखने चलें।"

"कहाँ?"

"वही सामने मैदान में!"

"चुप !"

"मैं तो जाऊँगा ।"

"नहीं ग़लत बात होगी ।"

"भूत आदमीकी तरह होता है न !"

"रामू, वह तो क़िस्म-क़िस्मके जानवर बन जाता है ।"

"तुझे कैसे मालूम ?"

"माँ कहती थी ।"

"क्या ?"

"यही कि एक दिन सांझको वह खेतसे लौट रही थी । रास्तेमें उसे आगे आगे एक कुतिया बगल बगल चलती दीखी । कुछ दूर आगे जाकर वह नीचेकी ओर मुड़ गई । मांकी समझमें बात नहीं आई कि यह कुतिया कहाँ गाँवका रास्ता छोड़कर जा रही है । नीचेकी ओर देखा—तो एक भेड़ नीचेकी ओर भाग रही है । मां आश्चर्यमें पड़ गई । फिर उसने भैंसे की आवाज सुनी । देखा कि एक भैंसा खेतोंमें कूद रहा है । चुपचाप मां घर लौट आई ।"

"तब किशोर जरूर भूत देखने चलेंगे !"

"नहीं दादा ।"

"तब अकेला मैं ही जाऊँगा ।"

"आज कौन-सा दिन है ?"

"अमावस ।"

"बिलकुल मत जाओ !"

फिर एक किलकारी सुनाई पड़ी । दूर बादल गरज रहे थे । उल्लू अभी

बोल ही रहा था।

लेकिन रामू माना नहीं। छप-छप-छप करता, बाहर कीचड़में बढ़ गया। कुछ भी किशोरकी समझमें नहीं आया। अवाक् खड़ाका खड़ा ही रह गया।

अगली सुबह रामू मैदानमें बेहोश पड़ा हुआ मिला। उसके आस-पास मुर्दोंकी हड्डियाँ पड़ी हुई थीं।

होशमें आनेपर रामूने कहा कि उसने भूत देखे हैं। लेकिन कहनेकी मनाही है। नहीं तो वे उसे मार डालेंगे।

चीनके आँचलमें

"आप बच गए। हमें बड़ी खुशी हुई।" शोया पास घोड़े को ला, चीनी भाषामें बोली।

"आप लोगोंकी वजहसे।"—जनरलने जवाब दिया।

"चोट ज्यादह लगी है?"

"नहीं।"

"पीड़ा होगी?"

"अब नहीं है। भला आप लोगोंका अहसान क्या भूल सकूँगा।"

रेगिस्तानमें उन अजनबी लोगोंके 'काफ़ले' के बीच, जापानी जनरल सोजोने अपनेको पाया। यह लड़की कितनी हमदर्द है। अभी-अभी इसने सब घावोंको धोकर, पट्टी बाँधी थी। वह पहचानकर कितने नज-दीक सहजतामें आई। पहचान, जैसे इस गुणकी वह अवहेलना नहीं कर

सकी। बिलकुल जापानी गुड़िया-सी लगती थी। काले-काले कटे सुन्दर बाल नीले फीते से बँधे, बड़ी-बड़ी बादाम सी आँखें, लापरवाहीसे बच्चोंकी तरह कपड़े पहिने थी। सुन्दर खाकी ब्रिचेज, जापानी अफसरोंके से लम्बे बूट। एक चमड़ेके 'केस' में 'रिवाल्वर' लटक रहा था। चीनके भीतर किसी पर्वतीय देशकी वह लगती थी।

खेमें उखड़ चुके थे। शोर-गुल, हल्ला बन्द हो गया। सब समान खच्चरों पर लद चुका था। चालीस-पचास आदमी, कुछ गधे, कुछ घोड़े, बाकी ऊँट पर सवार थे। सबके चेहरोंसे निष्ठुरता टपक रही थी। इन लोगोंका काम लूट-मार करना था। शायद हमलाकर, जो कुछ हाथ लगे उसीमें सन्तुष्ट होनेके अलावा मनुष्यकी कीमतका ज्ञान भी इनको नहीं होगा।

शोया इनके बीच दयाकी एक पुतली थी। सरदारकी बहिन होनेसे उसका मान था। उसकी आज्ञाका उल्लङ्घन न होता। वह उनकी क्रूरताके बीच सारी माया, ममता सिमेटे, परदेशीको पसरने, जगह दिलमें दे देनेमें कंजूस नहीं थी। अपने नारी-आँचलके आश्रयमें दुखीकी देख-भाल तत्पर हो वह करती। कोई उसे जान न पाता। वह उसे अनजान न मानती। उसके व्यवहारमें अपनेको खो वहीं रह जाती। ऐसी थी शोया जिसको पास पाकर जनरल अपनेको एकाएक बिराना अब नहीं मान लेना चाहता था। वह कोशिश कर रहा था कि कमजोरीकी वजहसे कहीं बेहोश न हो जावे। बार-बार आँखोंके आगे काला परदा पड़ता। वह चुपचाप सावधानीसे आँखें मूँद लेता। घावमें पीड़ा थी। दिल भारी था। कन्धेके पाससे गोली आरपार निकली थी। पाँव पर भी गहरे घाव थे। हाथ उठता न था। बिलकुल फीका लग रहा था। शोयाने सब जान लिया। वह समझ गई।

एक ओर लटकती बोतल उठाई और सौंप दी। जनरलने कुछ 'आसव' पी लिया। ज़रा जीवन आया। शोयाने एक सजीवता बिखेर सीमा बाँध दी। वह इस सीमाको लाँघ न सकता था। जनरलकी पीड़ा मिट गई। शोया और पास आकर बोली—"थक तो नहीं गए।"

"नहीं। उस खेलको जिन्दगीका आखिरी खेल समझा था। लेकिन...?"

"खेला।" शोयाने आश्चर्यमें बात काट, आँखें उठा, देख, नीचे झुका लीं।

"खेल ही तो वह लगता है। मौत आई। निशाना चूक जाने पर भाग गई। अच्छा, खैर तुमको किस नामसे पुकारूँ?"

शो...या—।" धीमे स्वरमें वह बोली।

"क्या कहा? शोया मैं वह कह सकता हूँ?"

शोयाने सिर हिलाया।

"शोया...!" जनरल फिर बोला।

शोयाने जनरल की ओर कुतूहलसे देखा।

"तुम इस गिरोहकी देवी हो।"

कुछ घण्टेमें ही अथाह दुःखके बाद, सहारा पाकर वह भावुकतामें बह गया।

और शोया बात ठीक न पकड़ हँस दी। वह उसे गिरोहके अपने गिने-चुने साथियोंसे बाहर पाती। जो कहीं भी उनसे मेल नहीं खाता था! उनसे उठा लगता। इसके नज़दीक एक अज्ञात गुदगुदी क्यों उठती थी?

'शोया—।' जनरलने रुककर धीमे स्वरमें पुकारा। शोया नज़दीक

आई। जनरल चुप रहा। कुछ कहना चाहकर भी न कह सका। आगे कोई बात नहीं हुई। सब चुपचाप आगे बढ़ रहे थे।

सिर्फ 'तीन दिन' जनरलके दिलमें बात उठी और खो गई। वह तीन दिन गहरा घाव बना चुके थे। अब घाव मुलायम पड़ गया था। दुखता नहीं था। लड़ाईकी याद आती थी। धुँधली-धुँधली बातें, चलचित्रके समान आगे आ, ओझल हो जातीं। आहें, कराहना, विषादका करुण गीत, वेदनापूर्ण गुञ्जन—अब तक साथ थी। जीवनकी धुँधली रेखा फिर चमक उठती। वह जीवित था। वह मौतको धोखा न दे, खुद धोखा बन, अब इस नारीकी छायाका सहारा पा चल रहा था। अपनेसे खुद अविश्वास होता। अन्यथा यही नारी तो कहती है—चल। कहीं उसकी जरूरत है क्या। वह तो बिलकुल कोरा था। सब कुछ जीवनमें इकठ्ठा की बातोंको भुलाकर, चीनकी उस टुकड़ीके आगे खड़ा था। वह उसे मौतका हुक्म सुना चुके थे। फिर अपने विश्वासको ठीक मान वे चले क्यों गए। उनके जीवनके प्रति घृणाके अलावा और कुछ भी उन लोगोंके पास नहीं था। असहाय, तनी राइफलोंके आगे उसने न सोचा था, आगे वह फिर 'गुन-गुन' करेगा। वह मौका भूल सा अब लगता। जिसकी याद प्यारी-प्यारी लगती। मौत वास्तव न थी। नहीं उसे साथ ले लेती। इस तरह उपेक्षा कर न चल देती। इसी मौत पर वह सब कुछ सोच चुका था। कहीं कुछ भी डर बाकी न था। अपने प्रति सारे खोए विचार एकाएक वह बटोर-बटोर नहीं अब पाता था। सब विचार तो चूक गए थे। एक अन्तिम काला धब्बा मात्र बाकी बचा था। सोचा था कि वह धब्बा उसे ढक लेगा। वहीं वह सो जावेगा, गोलीके साथ जीवनमें बँधा रहेगा। किन्तु वह धब्बा सुफेद

चिट्ठी एक लकीर बना ओझल हो गया। उसे पसरने जगह मिल गई थी। अब सब फिरसे सोच लेनेको काफी खाली वक्त पास पड़ा था।

घटना भी आई थीं, सिलसिलेवार। उनके भीतर वह था। वहीं वह रह गया। छुटकारा नहीं मिला। उस बन्धनका तत्व उसने पा लिया। परिस्थितियोंने उलझन आगे रख दी। वहीं एक ठिकाना पा, वह खुद तर्क करता, राय देता, सोचता और अन्तमें चुप रह जाता था। सन्देहने उसे खूब ढक लिया था।

पिछली सन्ध्याको वह कैदी था। चीनकी उस टुकड़ीके नायकने फैसला सुनाया—अगली सुबह सब गोलोसे उड़ा दिये जावें। झोपड़ीमें बिलकुल अँधियारा था। बीच-बीचमें कहीं-कहीं सूराख थे। वहींसे बाहर बारीक नजर पड़ती थी। अन्दर जरा रोशनी भी आती। काले-काले अन्धकारमें उस जरा रोशनीका एक सहारा था। एक जरा बड़े सूराखसे बाहर उसने देखा; चारों ओर बड़ा रेगिस्तान, सिर्फ झोपड़ीसे जरा हटे कुछ डेरे पड़े थे। दूर तक सिर्फ रेत ही रेत नजर पड़ती थी। कहीं आँखें टिकती न थीं। रेतकी कणोंकी उस बड़ी ढेरीमें आँखें बिछ जातीं। खयाल कुछ आता कि उसकी आँखोंकी ओटमें ही कहीं और पड़ाव भी तो दुबके होंगे। कौन जाने वहाँ क्या हो रहा हो। यह सब वह जान नहीं सकता। वह तो एक साध्य सा अब जीवित था। जिसका जीवन कोई महत्व नहीं रखता। जिसकी मौत पर भी एक मखौल कल चीनी सिपाही उड़ावेंगे। कौन जाने उसके शवको भी वे कुचल, मानवताकी गहरी पहेलीको कुछ सुलझा दें। जहाँ युद्धके लिए दिमाग आपसमें विद्रोह पैदा करते हैं; अपनेको सभ्य कहला निरे असभ्य बर्तावको सब ही मान लेनेको तैयार हैं। जहाँ किसीका आदर

नहीं। एक दूसरेके प्रति बनाई घृणासे मुँह बिचका चुपचाप चले जाते हैं। एक दूसरेका हाल पूछ लेने को किसीको फुर्सत नहीं है।

सन्तरी बाहर घूम रहा था। इस कैदीकी रक्षा उसे करनी थी। उसकी लापरवाही पर रक्षा जरूरी थी। यह सब सिर्फ तमाशा लगता। दूसरेके जीवनका मोल आज जान, हिफाजतकर, कल उसीको ठुकराना नई बात उसे लगती! स्वार्थ भी कहीं छूता नहीं मिलता था। फिर वह सन्तरी बार-बार आँखोंके आगे आता। चुपचाप कुछ कदम आगे बढ़ा 'मिलिटरी' के बनाये कायदेसे फिर लौट आता। सामने कुछ दूरीपर एक चीनका बूढ़ा, ऊँटके बालोंसे अपना थैला सी रहा था। अजीब गँवारी हँसी हँसता। वह गन्दे-गन्दे गीत गा रहा था। वह पागल-सा लगता। क्यों वह हँसता था। अपने आप हँस जाना यह आदत सबको नहीं पड़ती। और वह बूढ़ा आँखें बोरे पर टिकाये, पास उसे ला फिर सुई और तागेमें रह जाता। एक बड़ा लुण्डैरू कुत्ता पास आ भू-भू-भू करता, फिर भाग-भाग जाता। कुत्ता इस सिलाईकी क्रियासे परे, देखता उस बूढ़ेपर, उससे कुछ भी पुचकार न पा 'भू-भू-भू' कर डरता दूर हट जाता।

धूलसे भरी फर्श, पाँव उसमें डूबते लगते। चुपचाप इधर-उधर टहलता रहा। नींद आती। चाहता सो जावे। कहाँकी समस्या न हटती थी। फर्श पर बदबू चल रही थी, मजबूरी थी। वहीं रहना था उसे, अपनी इस शुद्धतासे स्पर्धा होती थी। मैलमें जगह पानेमें हिचक क्यों अब थी, संतरी के पाँवोंकी आवाज, उस सुनसानमें साफ-साफ सुनाई पड़ती थी। बीचमें कभी-कभी कुत्तोंका स्वर, रुदन, प्रतिध्वनिमें फैल जाता। ठण्ढ पड़ने लगी। वह जानता था कि रात्रि इसी प्रकार इधर-उधर चल फिरकर काटनी पड़ेगी।

नंगी धरतीपर क्या आजही उसे सोना बदा था। कल तो फिर यह एक सनातन बात लगेगी। आज उस धूलसे भरी धरतीसे डर वह क्यों रहा है। हल्के पाँव किसी जन्तुसे छू गये। उसके खड़े बाल पाँवसे लगे, वह हट गया। चूँ-चूँ-चूँ करता वह भाग गया। उसे बड़ी हँसी आई। वह अन्धकारमें खिलखिलाया। ठण्ढ बढ़ती लगी। कँपकँपी लगने लगी। एक कोनेमें चुपचाप दुबककर वह बैठ गया। धीरे-धीरे नींदने उसे घेर लिया था।

नींद टूटी। दूर कहीं गोलियोंकी धाँय-धाँय सुनाई पड़ी। उसने बाहर देखा। बिलकुल सन्नाटा था। लगा वह भी ऐसी ही कुछ गोलियोंके बीच सुबहको खो जावेगा। जमीनपर पड़ा रहेगा। चींटियाँ इस शरीरपर लगी खेलेंगी। फिर बाहर सन्नाटा चीरती गोलियोंकी आवाज दूर कहीं हल्की चमकीली रेखा उठती, अस्त हो जाती। वह चुप रहा। गोलियोंकी आवाज थम गई थी। फिर.......।

किसीने ठोकर लगाई। नींद उचट गई। चीनी सिपाही खड़ा था। वह उसे ले गया। उसने देखा, पाँच कैदी—एक दो, तीन, चार.......

बीस सिपाही, एक, दो, तीन.......

बीस गजका फासला.......

धाँय—धाँय—धाँय...पहली फायर।

धाँय—धाँय—धाँय...दूसरी फायर।

धाँय—धाँय—धाँय...तीसरी फायर।

अब उनका अफसर आगे बढ़ा। एक-एक कैदीको उसने जूतेसे ठुकराया। एक हिलता-डुलता लगा। उसने पिस्टल निकाली, माथेपर निशाना साधकर गोली दाग दी।

पाँच और कैदी ······

फिर·······

फिर······

धाँय—धाँय—धाँय······

धाँय······

धाँय······

अब जनरल···

सामने छै सिपाही तैयार खड़े।

फासला—बीस गज।

'फायर ?'

धाँय, धाँय, धाँय······

बहुत गरम। उसने आँखें खोलीं। पाया अपनेको एक काफलेसे घिरा।

जनरल अब थक गया था। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। उनके साथी काफी आगे बढ़ गये थे। कुछ सुस्ताकर जनरलने घोड़ा आगे बढ़ाया। बोला—"आप लोगोंने मुझे कैसे पाया ?"

"हमें देखकर वे भाग गये।"

"और मेरे साथी ?"

"··········"एक चुप्पी।

"सब मर गये।"

कोई जवाब नहीं।

"कैप्टिन भी।"

शोयाने आँखें उठा कुछ समझ लेना चाहा। वह नहीं बोली।

"कलतक हम साथ-साथ थे। पिछले महीने उसकी शादी हुई थी। लड़ाई शुरू होने पर······।"

जनरल रुक पड़ा। उसने शोयाकी ओर देखकर पूछा—"बोतल!"

शोयाने बोतल दे दी। जनरलने कुछ घूँट 'आसव' पी लिया, फिर बोला—"उसकी बीवी हमें दूर तक पहुँचाने आई थी। उसकी छोटी बहिन······।" वह चुप हो गया। कुछ याद आई, पूछा—"आप लोग मुझे क्यों ले आये?"

यह सवालकर वह अपने उस वायदेको याद करने लगा, जो उन दोस्तोंने किया था। साथ जियेंगे और मरेंगे भी। लेकिन बात ठीक साबित नहीं हुई। एकाएक दिलमें विद्रोह उठा। अपने घोड़ेका मुँह फेरते उसने कहा—"मैं लौटकर उसके पास हो आऊँ। उसे बिना देखे मन नहीं मानता।"

शोया आगे बढ़कर बोली—"तुम बहुत थक गये हो। वहाँ अब क्या मिलेगा। जानवरोंसे बची कुछ हड्डियाँ······।"

जनरल रुक पड़ा। यह नारी झगड़कर केप्टिनके आगे क्यों खड़ी हो रही है। और केप्टिनकी उन हड्डियोंका वह क्या करेगा। उन हड्डियों-को जापानसे दूर क्या इस रेतमें रलना बदा था। वहीं वे पड़ी हैं। जिनपर कभी मांस था। मांसमें जीवन भी था। उसी मांसको कपड़ेसे ढकना लाजिम लगता। व्यक्तिसे ऊपर था एक देश। जिस देशकी जरूरतोंके लिये उन हड्डियोंको वहीं पड़ा रहना पड़ा। जो अब अहसान न थीं। न उनकी कोई जरूरत व्यवहारमें थी। यह आपसकी लड़ाई। इतनी ढेर-सी हड्डियोंके बीच आज दुनियाकी सभ्यताको चलना है। जहाँ एक दूसरेको धोखा देकर, इसी तरह दूर-दूर कोनोंमें हड्डियाँ पड़ी रहेंगी। उन हड्डियोंके अस्तित्वमें कहीं

सभ्यता 'भूल' जाना न चाहे। पीछे दूर उसने देखा—कुछ नहीं—भरा, भारी रेतका मैदान, लगा, वे पड़ी लाशें कुछ उठतीं, दूर हटी। भ्रममें वह बोला—"तुमने भी देखा शोया।"

"क्या ?" शोया नजदीक आई।

"वह देखो"—उसने उँगली उठाई।

शोया उससे टिकी, सिर मिलाये बोली—"कुछ नहीं।"

"वह केप्टिनकी लाश !"

शोयाने जनरलका हाथ अपनेमें ले कहा—"नामुमकिनके फेरमें पड़ना उचित नहीं, अपने अधीन बात न थी।"

उसके स्पर्शसे एक गुदगुदी जनरलके दिलमें हुई। शोया उसके दिलमें पहुँच चुकी थी।

"आज डेरेपर पहुँचकर तुमको 'अफीम' बनाकर खिलाऊँगी।"

"अफीम······"—जनरल चौंका।

"हाँ।"

"तुम क्या करती हो ?"

"अफीमका व्यापार। कानूनको हम नहीं मानते।"

"कानून को······।"

एकाएक दूर उन्होंने देखा कि कुछ सवार आ रहे थे। शोभा बोली—"यहाँ सब एक दूसरेके दुश्मन हैं। हर वक्त खतरा रहता है। भागो—भागो ?"

दोनोंने अपना-अपना घोड़ा बढ़ाया। तेजीसे घोड़े जा रहे थे।

दूर गड़गड़ाहट सुनाई दी। दूर हवाई जहाज दीख पड़े। गड़गड़ाहट

और नजदीक आती लगी। फिर बड़ी आवाज। हवाई जहाज चक्कर लगा रहे थे।

"तुम आगे बढ़ो।" शोया बोली—"मैं इनको इधर-उधर बहका दूँगी। तुम आगे भागो।"

शोया जानती थी कि अब छुटकारा नहीं। वह खुद खतरेमें पड़ सकती थी।

"शोया!"—जनरल बोला।

शोया सारी परिस्थितियोंसे परिचित थी। भागना बेकार लगा। वह चुपचाप जनरलके नजदीक लगकर खड़ी हो गई।

सामने एक बम गिरा। रेत ऊपर उठी। चारों ओर रेत फैल गई।

फिर एक जहाज उनके ऊपर मँडराया। काफिलेके सरदारने पास आ घबराकर कहा—"भागो, वक्त नहीं है।"

शोया निश्चित खड़ी थी।

सरदारने फिर कहा—"पगली न बन।" खुद आगे सरपट घोड़ा दौड़ाया।

शोया स्थिर थी। उसने अपनी 'पिस्टल' उठाई और जहाजकी टंकी पर निशाना साधा।

जनरलने कहा—"यह क्या शोया?"

शोया बोली—"छोड़ दो, चुप रहो। हमारे साथ इनको लड़ाई लड़नेका क्या हक है। क्यों ये हमारी स्वतन्त्रता कुचलना चाहें?"

शोया समझदार और जानकार उसे लगी। जहाज एक ओर हटा। फिर कुछ बम बरसाये। चारों ओर रेतका गुबार। शोया और जनरल उस रेतमें छुप गये।

"शोया।" जनरलने पुकारा।

देखा, सामने जहाज खड़ा था। दो अफसर उस परसे उतरे। शोयाने अपनी 'पिस्टल' उनकी ओर की।

जनरल चौंककर बोला—"शोया।"

धाँय—धाँय—धाँय—गोली चली। एक उनमें गिर पड़ा। शोयाने देखा, 'पिस्टल' खाली थी! उसने गलेसे तावीज निकाल खोला, एक गोली निकाल, मुँहमें डालनेको थी कि जनरलने टोका—"शोया, खुदकशी!"

शोयाने गोली फेंक दी।

इसी बीच दूसरा अफसर नजदीक आकर बोला—'आधीनता।' शोयाने अपनी खाली पिस्टल देते घूरते कहा—"खाली है।"

"आगे बढ़ो।" अफसर बोला।

दोनों चुपचाप आगे बढ़े। जहाजमें चलते एक बार शोयाने रेगिस्तानके चारों ओर देखा। एक सूनी दृष्टि उसपर डाली।

दो घण्टे बाद वह जापानी सेनामें पहुँच गये। साँझ होनेको थी। जनरलका सारा बदन दुःख रहा था। वह उठ नहीं सका। वह उतारा गया। शोया साथ थी, शोयाको दो सिपाही ले गये। जनरल आगे बढ़नेको था कि कमांडिंगने रोक लिया।

कमांडिङ्गने अपने मोटे हार्नके चश्मेको अलग हटाते कहा—"बैठ जाओ।"

जनरल बैठ गया।

"तुम दुश्मनोंके हाथ पड़ गये थे?"

"हाँ"

"कितने आदमी ?"

"चालीस"

"और सब ?"

"मर गये। मुझे शोयाने बचाया। मैं उम्मीद करता हूँ कि उसके प्रति ठीक वर्ताव होगा।"

"तुमको अभी यहीं रहना होगा। कुछ दिन मेडिकल बोर्डमें रहना जरूरी है।"

"एक बात…"

"क्या…"

"शोया…?"

"तुम अब जा सकते हो।"

पन्द्रह रोज बाद :

शोयाके ऊपर कमांडिङ्ग हिसोंग, जनरल और एक अफसरके 'ट्रिब्यूनल' ने कुछ चार्ज लगाये।

पहला—जापानके प्रति उसकी घृणा।

दूसरा—जापानी वायुयानके अफसरकी हत्या।

तीसरा—भागनेकी कोशिश करते दो चौकीदारोंकी छुरीसे हत्या।

एक मतसे सबने मौतकी सजा दी!

जिस टोलीने उसे गोलीसे उड़ाया, उसका नायक जनरल था।

शोयाकी लाश भी रेतके खुले मैदानमें पड़ी रही।

और उसी रात जनरल कहीं चला गया। आज तक वह लौटा नहीं है!

सपनेकी दुनिया

यह अचरजकी बात ही थी। पर रमेशने अचरजको मिटा डाला, कारण कि भ्रम की ज़रा भी गुञ्जायश वहाँ न थी। सामने मेज़पर चिट्टे गुलाबी रङ्गके कुछ चीर पड़े थे। कुछ असावधानी और उलझनकी वजह वह ठीक-ठीक रङ्ग पकड़ नहीं पाये थे। यह तो अक्सर जल्दीमें रोज़ ही हो जाता है। कहीं कपड़े पर यदि ठीक रङ्ग नहीं बैठा तो वह जगह कोरी ही रह जाती है। पर इसमें शक नहीं है कि हर पहलूसे मोहनका 'फारमूला' सही है। कहीं कोई अड़चन इस आविष्कारमें बाकी नहीं रह पाई थी। सामने जो 'टेस्ट-ट्यूब' पर रखे थे, उनमें भी वही गुलाबी रङ्गका घोल था। उसके भीतर बार-बार लगता कि मोहन मुस्कराता हुआ कहना चाहता है—'मैंने बात तुझसे सही कही थी, तू तो बेकार उसे झूठ गिन रहा था।'

सपनेकी दुनिया

झूठ............?

यह मोहन जिन्दा है, क्या यह झूठ नहीं। एक अरसेसे वह बीमार है। पहले डबल निमोनिया हुआ। कुछ तन्दुरुस्ती सुधर रही थी कि लापरवाहीसे फिर रोगी हो गया। जो रोग पहले साध्य था आज अब उसी को डाक्टर असाध्य साबित करते जा रहे हैं। बात-बातमें सन्देह होते हैं। कुछ भी उत्साह जैसे कि रोगीसे उनको नहीं, न सरोकार रखनेवाला तक़ाजा ही है। जब रमेश छेद-छेद कर सच्ची बात पूछनेकी कोशिश करता है, तभी सरकारी अस्पतालका वह बड़ा डाक्टर झुँझलाकर कहता है—"मिस्टर, यह अस्पताल कोई यतीमखाना नहीं है, न हमारे हाथमें ऐसी दवा है कि मुरदेको भी प्राण दे सकें। आप अपने साथीको कहीं और जहाँ चाहें दाखिल कर लें—हमें इसमें जरा भी एतराज नहीं है।"

डाक्टरके चले जानेके बाद रमेश चुपके-चुपके भीतर वार्डमें पहुँच, मोहनके सिरहाने खड़ा होकर उस सुस्त और मुरझाए चेहरेको पढ़ लेना चाहता है। तभी नर्स आकर 'टेंपरेचर' लेती है। कहीं भी भय उसे नहीं रहता। छोटे बच्चेकी तरह रमेश उस युवतीके चेहरेकी ओर ताका करता है। उसकी उस सफेद पोशाकके भीतरके कोमल नारी-हृदयको पढ़ लेनेकी चेष्टा उसने कभी नहीं की। फिर भी उस डाक्टरके विपरीत वह उसे धीरज देती और समझाती है कि ऐसी कोई खास चिंताकी बात नहीं। वह बहुत दृढ़ उसे मिलती है। कभी-कभी तो उस कठोर नारीके सन्मुख रमेशका पुरुष-हृदय पिघल जाता है। रमेश गद्गद् हो न जाने क्या पूछ डालता है, तो वह मुस्कराकर जवाब देती है—"आप तो हैं बावले। वह अच्छे हो जायेंगे। यह मेरा अपना विश्वास है।"

लेकिन मोहनका जीवित रहना जितना कठिन है उसका मर जाना भी उतना ही सरल होगा, यह किसी भी तरह रमेश स्वीकार करनेको तैयार नहीं है। वह देखता है—आँखे खोल-खोल कर देखता है। उस बड़े अस्पतालमें प्रयोग होते हैं। एक ओर नियतिका विद्रोह है, दूसरी तरफ मनुष्य का आग्रह। इधर मरीज भरती होते हैं उधर वहीं विद्यार्थियोंको शिक्षा दी जाती है। वह अस्पताल प्रांतीय सरकारका है। वहाँसे हरसाल नामी-नामी डाक्टर पास होकर नगरों-नगरोंमें पेशके लिये चले जाते हैं। वहाँ मुरदों की भी कीमत होती है। उन पर भी विद्यार्थी अपना सबक दोहराया करते हैं। कहीं-कहीं भारी झगड़ा वह पाता है। यह नर्सोंकी जाति क्या सारे मरीजोंका दु:ख पोंछ लेनेकी सामर्थ रखती हैं, जैसे वह दु:ख भी घावपर पड़ा मवाद ही हो, जो हाईड्रोजन-पराक्साइड, बोरिक आदिके पानीसे आसानीसे धुल जाता है। और वह विद्यार्थियोंका समाज, उनके रहन-सहनको देखकर दङ्ग रह जाता है। वे सिरसे पैर तक सुन्दर कपड़ोंसे ढके रहते हैं। हर एक अपना रोब जाहिर करता है। उनकी सूट, टाइयों तथा और चीजोंपर उसकी आँखें अक्सर अटक जाती है। उनके आडम्बरके लिये कितनी भी स्वाभाविक घृणा उसके मनमें हो पर वह उनकी सहायतासे इनकार नहीं कर सकता। इसीलिये यदि वह कभी उनकी हँसीकी खिलखिलाहट गैलरियोंमें सुनता है, तो रोगीके पाससे उठकर उनकी भर्त्सना करने नहीं जाता। वह बाहर झाँककर देखना तक नहीं चाहता कि वे क्यों हँस रहे हैं।

पिछली रात्रि मोहनने पुकारा था—रमेश ?

"क्या चाहिये मोहन ?"

"...कुछ नहीं।"

"तब बात क्या थी ?"

"तुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा होगा।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।"

"और अब तुझे डर नहीं लगता ?"

"मुझे ?"

"तू तो पहले बहुत डरा करता था।"

"आज अपने जीवनका मूल्य विसार चुका हूँ।"

"झूठ है यह बात।"

"तो..."

"जाने दे, वह 'फारमूला' आखिर मैंने निकाल लिया है। मेरा ख्याल है कि गलत नहीं निकलेगा।"

"कौन सा ?"

"अरे वही गुलाबी-रङ्गका। हमारे आगे कितना विचित्र प्रश्न है ? इन रंगों तकके लिये हम और देशोंका मुँह ताका करते हैं। लाखोंकी विदेशी चूड़ियाँ व और ऐसी चीजोंकी खपत हमारे यहाँ है, जिनको हम यहाँ बना सकते हैं। यह तो सब जानते हैं कि देवदारके कच्चे फलोंसे काफी प्रति-सैकड़ा अच्छी ब्ल्यू रोशनाई निकल सकती है, किन्तु उद्योग कौन करे।"

"चुप रह मोहन। अधिक बातें करनेकी तुझे मनाही है। अरे, तेरी तो साँस भी फूलने लगी ! फिर उस 'फारमूला' को देख लूँगा। इस वक्त तू सो जा।"

लेकिन मोहन कब माना था। रमेशने देखा कि उसका चेहरा लाल पड़ रहा है। बुखार अभी भी तेज था। इस तरह कब-कब अनर्गल मोहन

नहीं बका करता था। बुखार जब बहुत चढ़ जाता है, वह बेहोश हो जाता है, अब यह बात दिनचर्यामें शामिल हो गई है।

—तो मोहन उठ बैठा और सिरहानेके नीचेसे कागजका टुकड़ा उठाकर तेजीसे बोला,—"मैं मरूँगा नहीं रमेश। जिस आदमीको जीवनमें ठोकरें खानेके बाद भी उम्मेद बनी रहती है, वह साधारण धक्कोंसे कभी चूर नहीं होता है। अब यह मेरी सफलताकी शुरूआत है। तेरी घबराहट व्यर्थ साबित होगी तू बाधा न दे। कठिनाईको जीवन-प्रतीक मानकर चलनेमें हमेशा सहूलियत ही होती है।"

मोहनका हाथ काँप रहा था। तेज ज्वरके सारे लक्षण उसके शरीरपर मौजूद थे—धँसी गड्ढेमें बैठी आँखें पीली चमड़ी पड़ा चेहरा और कंकालकी तरह सीमित शरीर। यह सब होनहार था। अन्यथा बीमारी जीवनके कटु अनुभवोंसे कदापि बुरी नहीं। रमेशने उस कागजके टुकड़ेको लेकर, मोहनको उबार लिया। वह उत्तेजित मोहन अब थककर आँखें मूँदे लेट गया था।

तो यह जीवन है?

अपने परिवारसे बाहर समाज मिलता है, और—और आगे एक बड़ी, फैली हुई दुनिया है। व्यक्ति मकानसे बाहर, गली पार करता है! गलीसे बाहर चौड़ी सड़कें हैं। वह जब आगे बढ़ जाता है, तो कभी-कभी गलीके आसपास, अथवा सड़कके किनारेकी कोई बातें स्मृतिमें उभर आती हैं उनमें अनुभूति और पीड़ा तो होती ही है, पर कभी-कभी जीवनके भीतर वे पुरानी घटनायें अड़चन बन जाने पर तुल जाती हैं। और यह आदमी है मजबूर—वह ऐसी बातोंसे कितना ही हटकर रहना चाहे, पर उनमें वह अपनेको लिपटा ही पाता है।

सपनेकी दुनिया

जब एक दिन रमेश और मोहनने कभी गाँवसे बाहर शहरी स्कूलमें प्रवेश किया था और गाँव और शहरकी तुलना करते-करते वह थक गये थे। वह एक-दूसरेके बहुत निकट भी थे। आपही समझौता भी हुआ। तब एक दिन चुपकेसे विश्वविद्यालयकी भारी परीक्षाओंसे भी बरी हो गये। उस एम० एस-सी० की बड़ी डिगरीको लेकर, उनको कोई खास लाभ नहीं हुआ। देश गरीब था। विज्ञानकी ओर सबकी अपनी उदासीनता थी। साधारण प्रयोगोंसे सोना-चाँदी जिस तरह बन जाता था, वह केवल इम्तहान पास करने का ज़रिया था, उसके बाद उसका कुछ मूल्य नहीं रह गया। व्यवसाय और पैसे पर टिकी दुनियाके आगे उनको भी अपनी डिगरीके बोझके साथ बार-बार झुक जाना पड़ता था। जो आत्म-सम्मान उनका अपनेमें था उसका खजाना भी निपटता चला जा रहा था। सुन्दर अक्षरोंमें कागज पर छपी वह 'डिगरी' रोटीकी समस्या हल नहीं कर सकी थी। तब अपनी अज्ञानता पर उनको बड़ी हँसी आई। साधारण मजदूरसे ऊपर अपनेको गिन लेनेवाला घमंड भी काफूर हुआ और दुनियाकी तह खोलकर उसे देखनेवाले ज्ञानको पाकर एक दिन एक गुजारे लायक नौकरी ये करने लग गए।

वह एक रंग बनानेका कारखाना था। दोनों फुरसत पाकर रंगोंका अन्वेषण करते थे। सोचते विदेशी-प्रतियोगिताने सब कुछ ढक लिया है। देश गरीब है। उसके पास जो थोड़ा पैसा है वह बाहर अन्य देशवाले लुभावनी चीजोंके सहारे खींच लेते हैं। इस मौजूदा हालतमें व्यक्ति लाचार खड़ाका खड़ा रह जाता है—उसकी वह विवशता मौतसे बुरी नहीं। तब भी किसी तरह रोजाना जीवनमें चलने लगे। नौकरीका आश्रय पाकर जीवनमें कुछ व्यवस्था आने लगी। सावधानीसे सब व्यवहार बरतना दोनोंने सीख लिया

था। लेकिन यह मोहन तो बीमार पड़ गया। रमेशकी सारी उम्मीदें उसे धोखा देती जाती हैं। मोहनको क्या आखिरमें इस तरह मरना ही लिखा था। यही था आखिरी नतीजा, तो उसने इतनी पीड़ा जीवन भर क्यों बटोरी? और अब वह मौत चन्द साल और इन्तज़ार क्यों नहीं करना चाहती कि मोहन कुछ सुलझ जाता। रमेश बातोंकी कितनी ही काट-छाँट कर डाले, कुछ भी मतलब हासिल नहीं होता था। और यह अस्पतालका जीवन भी किसी पैंठसे कम नहीं था, यहाँ तक कि मरीजोंके साथ कालेजके विद्यार्थी खिलवाड़ किया क़रते थे।

वह लड़के फुस-फुसकर कहते—वह गैंगरीनका आपरेशन यदि कुछ देरमें होता तो न जाने आदमीकी क्या हालत हो जाती।

तभी दूसरा टोकता—मैं अब जाकर बरी हुआ। उस डिपथीरियाके मरीजको तो मरना ही था, जल्द बला टल गई।

हाउस सर्जन आकर सुनता—आज सिर्फ चार मरीज़ मरे हैं। टी० बी० वाला वह लड़का भुवाली भेज दिया गया है। बड़ी मुश्किलसे पाँच 'बेड' खाली हुए हैं।

रमेश चुपचाप सुनता रहता था। यह आदमी तो मरनेहीको पैदा हुआ है फिर अफसोसका सवाल क्यों उठता है। वह भी दार्शनिक बन जाता तो उचित होता। तब मोहनकी मौतपर पैनी-दृष्टिसे वह विचार करता है। क्या उसकी जरूरत नहीं है? क्या मोहनको जीवित रहना ही चाहिये। गुदड़ी बाजारमें जैसे कभी असम्भव वस्तु पहुँच जाती है; उसी तरह यह मोहन भी मौतके भारी पलड़ेमें है। रमेश जैसे कि बेकार सब कुछ सोचना ही सीखा हो।

× × + ×

उस रमेशने अब अपनेको पकड़ लिया। एक झरोखेसे जैसे कि दुनिया को देखना उसे पसन्द नहीं। वह अस्पतालसे दूर अपने कारखानेमें बैठा हुआ है। वहाँ ऐसिड-अलकलीकी बोतलें हैं, कुछ और भी चीज है। वह प्रयोग यदि करे—तथ्यसे परेकी बात वह नहीं है। 'फारमूला' सही है। उसने लिखा तोल, साधारण तौरपर एक रंगमें परिणत हो सकता है। लेकिन यह भेद और कोई नहीं जानता। इस साधारण कागजके टुकड़े पर मोहनने जो कुछ लिखा उसके लिए एक अरसे तक उसने न जाने कितनी मेहनतकी होगी। इस लम्बी बीमारीमें भी वह उसे भूला नहीं। वहाँ भी वही रंगकी बात जगह बनाए रही। आखिर वह सफल हो गया है। और कल मोहन एक सफल वैज्ञानिक घोषित होगा। इसमें आनाकानीका कोई भी तकाज़ा नहीं है। भारी उत्साहके साथ मोहन रोगसे मुक्त होगा। उसके जीवनकी एक भारी ख्वाहिश अब पूरी हो गयी। जो एक ख्याल था, वह आज एक सत्य है। उसके लिये दुनिया अजनबी नहीं रहेगी। उसका व्यक्तित्व अब ऊपर उठ जावेगा।

तो वह मोहन जीवित रहेगा। मजदूरकी साधारण श्रेणीसे ऊपर उसका रुतबा हो जायगा। कल वह चाहे उस 'फारमूला' को बेचकर अमीरकी तरह रह सकता है। जिस पैसेको उसने जीवन भर हाथका मैल माना है, वही पाकर उसे भी स्वार्थ घेर लेगा मनुष्यका स्वभावही तो है। यह तो अवसर पर ही निर्भर रहता है। उसका बंगला होगा, मोटर होगी; और नगरकी सुन्दर प्रतिष्ठित परिवारकी लड़कीसे वह विवाह करेगा...। आदमी हैसियत कभी नहीं चाहता? स्वार्थके बिना क्या वह एक कदम भी चल सकता है? जिस मौतका सन्देह रमेशके मनमें बार-बार उठ रहा था, वह अब भय पैदा

नहीं करता। मौतके ख्यालको वह भूलता जा रहा है लेकिन.........?

रमेश और मोहनकी वह कोठरी ! चार रुपया किराया वे दोनों देते हैं। गलीमें धूल उड़ती है। उनको तो जीवन किसी तरह व्यतीत करना है। थोड़ी जगहमें दोनों बसर कर लेते हैं। मजदूरीके बहुत कम पैसे मिलते हैं, उससे उनका निर्वाह तक नहीं हो पाता। अक्सर रमेश सिविल लान्इस में घूमा है। वहां उसने स्वस्थ परिवार देखे हैं। उनके बंगलोंके चारों ओर बाग है। हरी-हरी बेलें खंभों पर लटकी रहती है। उस हरियाली को दिलमें बटोरकर बार-बार वह घर लौटा करता था। उनको देखकर ईर्षाने भी उसे कम नहीं घेरा। भारी विद्रोह वह अपनेमें जमा करता रहा है। तब वह हार जाता। उदासीनता घेर लेती। अपने उस जीवनके प्रति कितने ही धिक्कारनेके अवसर भी वह पा जाता है। उसके अपने अरमान और उम्मीदें भी है। उनको कभी उसने नहीं बिसारा है। कभी-कभी उसे उन पूंजीपतियोंसे भारी घृणा होती, जो उस तरह रहकर मजदूरोंको भूल जाते हैं। फिर भी वह उस वर्गमें खड़े हो सकनेका सपना अचेत अवस्थामें देखता रहा है। हृदयके विद्रोह करनेपर भी उस सुखकी आकांक्षा उसे छोड़ नहीं सकी। वह भी एक स्वस्थ परिवारमें पड़ा रहना चाहता। अपने जीवन विकारको हटा, वह भी सुखको सुख ही मान लेता। अपनेको धिक्कारता कि उस जीवनमें कोई ठीक अवसर नहीं मिला। अन्यथा उसकी यह हालत न होती। उपाय कब उसे कोई मिला है ?

मोहन जब बीमार पड़ा रमेशने चुपचाप उसकी हालत देखी। एक दिन ठंड लगी, बुखार आया, फिर पड़ोसके डाक्टरकी खुशामद उसने की और सुना कि निमोनिया हो गया है। वह कई बार उस बड़े सरकारी अस्पतालके

निकट गया। और मन मारकर लौट भी आया। 'बेड' खाली नहीं था। वह यदि गिड़गिड़ाकर कुछ निवेदन करता, तो उसके प्रति अनुग्रह दिखानेकी फिक्र किसीको नहीं होती। अस्पतालका अपना जीवन है, जिसमें इन छोटी बातोंका कोई महत्व नहीं। वह खीज उठता, पर झगड़ा किससे करता! फिर भी अहसान पर ही दुनिया कबसे खड़ी हुई है। और आखिर मोहन अस्पतालमें भरती हो ही गया। इस रमेशने अपने उस दोस्तको संभाला। हर तरह अपने जीवनमें उसे खड़े रहनेको जगह दी। उसके प्रति अपना कर्तव्य भी वह निभा रहा था। अपनी खाली आँखोंसे उसने उस अस्पतालके वातावरणको खूब समझा। वह जान गया है कि आदमी बहुत कच्चा है। उसको सबल पाना आसान काम नहीं। पहलूके साथ वह अस्पताल की बातोंको भाँपा करता। वहाँ शिक्षा पानेको आए विद्यार्थियोंसे बातें करता। उनकी बातोंमें एक मजाकका पुट सुन अचरजमें रह जाता। वह जान गया कि यह मोहन केवल एक मनुष्य ही है। रोज आदमी मरता है फिर उसकी अधिक चर्चा बाकी नहीं बचती। वह जैसे कि खोनेके बाद, अस्तित्वके भीतर नहीं रह जाता।

तो इस मोहनका जीवन अब एक जरूरत बन गया है। उसकी उम्मीदों पर खड़ा व्यक्तित्व अब दुनियाकी आँखोंसे उठ जावेगा। माना वह मोहन मर गया। तब उस आविष्कारका क्या होगा? मोहनको तो कुछ भी लाभ नहीं। न रमेश ही उसको अपना सकता है। मौत की आखिरी मंजिल को तय करनेवाले आदमीके लिए प्रतीक्षा व्यर्थ है। मोहन कदापि जीवित नहीं रहेगा। उस 'फारमूले' का उपयोग उसके लिए कुछ नहीं है। रमेश उसे अपना साबित करके जीवनमें आगे बढ़ सकता है। मोहनने कब उसकी

बातोंपर विश्वास नहीं किया ? उसके सहारे वह आज भी है। उसके सारे अहसानोंका अनुगृहीत है। इसके बाद रमेशको एक प्रतिष्ठा मिलेगी। वह देशके श्रेष्ठ वैज्ञानिकोंमें माना जायेगा। विश्वविद्यालय उसे मानपत्र देंगे। समाज उसका आदर करेगा। तब उसे निम्न भावना अधिक न सतावेगी। उसे अपनी ख्वाहिशोंको रोज मिटाना नहीं पड़ेगा। इस बड़े ढाँचेमें अपना रास्ता वह ढूँढ लेगा। इसमें कहीं भी तो अड़चन वहाँ नहीं है।

तब रमेशने एक बार उन गुलाबी चीरोंको उठा लिया। गौरसे उस रंगको देखता रहा। कागजका टुकड़ा उठाया। मोहनके छोटे-छोटे साफ-साफ लिखे अक्षरोंपर आँखें अटकीं। वह उन अक्षरोंको मिटा सकता है। अविश्वासका भारी सहारा उसके मनको दबा रहा था। उसके भीतर शैतान ने एकाएक मोहनका सारा व्यक्तित्व मिटा दिया। वह अपनेमें ठीक-ठीक क्या विचार करता। मनमें फिर कोई उलझन बाकी नहीं रही। उसने वह 'फारमुला' साफ-साफ अपनी पाकेट बुक पर उतारा। तीन-चार बार दोहराया। फैक्टरीसे बाहर निकला। चुपचाप चला गया। मनमें अब कहीं भी कोई उलझन बाकी नहीं थी। अपना भविष्य वह बार-बार गढ़ता जाता था। साफ-साफ वह उसके समीप पहुँचने लगा।

फिर वही अस्पतालकी इमारत। वही मरीज। वही नर्स। चुपचाप रमेश आगे बढ़ा। वह दृढ़ था। उसे जीवनसे कहीं भी घृणा नहीं थी। अपने प्रति उठती, झुँझलाहटको वह करीब-करीब भूल चुका था। कभी-कभी एक मलिनता हृदयको छू लेती। अपनी निगाहमें भी वह बार-बार अपनेको गिरा हुआ पाता, किन्तु उत्साहकी ओट पाकर फिर सावधान हो जाता था।

सपनेकी दुनिया

मोहन आँखें मून्दे लेटा हुआ था। आहट पा जाग उठा, आँखें खोली। रमेश धीरेसे बोला, "वह फारमूला गलत निकाला।"

"गलत!" एकाएक मोहनका सारा बदन सिहर उठा।

रमेश उस पीड़ाको भला कैसे सह सकता? उसकी आदमियत पिघल गई। वह और पास आया कहा, "नहीं मोहन, वह मैंने झूठ कहा था। तेरा आविष्कार भला कैसे गलत होता?"

लेकिन मोहन चुपचाप लेटा था।

रमेश और निकट पहुँचा। उसने मोहनका हाथ अपने हाथमें लिया। उसकी स्थिर आँखोंमें अपनी आँखें डुबो दीं। सावधान करते हुए समझाया, "अब तू अच्छा हो जा मोहन,.........।"

किन्तु वह सपनेवाली दुनियाकी तरह एक रोजगार सा था। मोहनकी आँखें स्थिर थीं, स्थिर रहीं। जैसे कि यह सिर्फ एक खिलौना था, जिससे अब रमेश खिलवाड़ रचनेके अलावा कुछ भी नहीं कर सकता।

नीनी

"सुरेश बाबू आ गये।" यह नौकरानीके मुँहसे सुन स्वामीके सिरहानेसे उठकर नीनी बाहर चली गई। दरवाजे पर वह ठिठकी, देखा कि अपना हैण्डबैग एक ओर मेज़ पर धरे, हाथमें स्टाथस्कोप लिये, आरामकुर्सीपर सुरेश बैठा हुआ है। वह ज़रा उलझी, अटकी, फिर आगे बढ़कर बोली, "आप आ गये।"

सुरेशने सावधानीसे 'हाँ' कहा, कुछ देर चुप रह आख़िर बोला, "पहले तो विश्वासही न हुआ कि पत्र आपका है। आपकी पाँच साल पुरानी लिखावट याद कर लेनेमें भी काफ़ी वक्त लगा और पहचान आना पड़ा।"

दस साल पुरानी 'आप' पाकर नीनी स्तब्ध रह गई। पाँच साल पुराने 'तुम' का कहीं भी पता नहीं था। कुछ सोचता सुरेश बोला, "मिस्टर माथुर कहाँ हैं?"

नीनी चैतन्य हुई। कहा, "अन्दर हैं, चलो।"

सुरेशने स्टाथस्कोप उठाया और नीनीके साथ हो लिया। कमरेमें जाकर देखा, योगेश बाबू पलंग पर लेटे हुए हैं। उनको बेकार उठनेकी चेष्टा करते देख टोका, "आप लेटे रहिये, अब आपकी तबियत कैसी है?"

नीनी दरवाजेकी ओटमें खड़ी थी। सुरेश अपने डाक्टरी कर्तव्यके साथ सब कुछ पूछ रहा था। वह समझ गया कि कस्बेके डाक्टरोंकी वजहसे रोग बढ़ गया है।

नौकर आकर बोला, "चाय तैयार है।"

नीनी दरवाजेसे आगे बढ़ी, पास आकर बोली, "रास्ता बहुत खराब है, थक गये होंगे। पाँच मील तो बैलगाड़ीका ही सफर है, कुछ नाश्ता कर लो।"

बाथरूमसे निपट, सुरेश चाय पीने लग गया। नीनी चुपचाप एक ओर खड़ी थी। नीनीने सुरेश और डाक्टर सुरेशमें भारी अन्तर पाया। जरूरतसे ज्यादा बातें करना जैसे कि वह भूल गया था। सुरेश चाय पी चुका था कि नीनीने 'प्रिसक्रिपशन' की फ़ाइल और टेम्परेचरका चार्ट लाकर दिया। सावधानीसे सब कुछ देखकर सुरेश बोला, "डरकी कोई बात नहीं है। आप तो बेकार घबरा गई थीं।"

'आप' फिर नीनीको डस गया। वह कुछ नहीं बोली, बिलकुल चुप रह गई।

"किस डाक्टरका इलाज है?"

"बोसका।"

कुछ सोचकर सुरेश बोला, "कोई अच्छा दवाखाना भी है?"

"काम-चलाऊ एक दूकान है।"

"एक कागज पर कुछ लिख वह बोला, "यह अभी मँगवा लीजिये। कुछ दवा बाहरसे मँगवाये लेता हूँ।"

नीनी बाहर चली गई। जरा सुरेशने नीनी पर सोचा। सुलझी और गम्भीर वह लगी। व्यवहारके भीतर है। ठीक और सही बातमें मतलब नहीं गिनती है। पिछले पाँच साल तक जिससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा, पतिकी बीमारीकी वजहसे उसे बुलानेको वह मजबूर हो गई थी।

"भाभी! भाभी!!" पुकारती एक युवती कमरेमें आई और डरकर भाग गई। सुरेश चुपचाप फ़ाइल देखने लगा।

नीनी कमरेमें आकर बोली, "घूमने जाओगे। यहाँ तो पूरा देहात है, मन शायद ही लगे; लाचारी है। प्रभाको तो नहीं जानते हो?"

"प्रभा?"

"ठीक, लो बुलाये लेती हूँ। प्रभा! प्रभा!!"

वही युवती भीतर आई। नीनी बोली, "मेरी नन्द है। अकेले जी नहीं लगा, इसे बुला लिया शहरका जीव देहातसे घबराता है। यही इसका भी हाल है।

दो सप्ताह गुज़रे। योगेश बाबूकी हालत बिगड़ती जा रही थी। नीनी उनमनी और घबराई रहती थी। प्रभा चन्द दिनोंमें ही सुरेशको पहचान गई। भाईकी बीमारीकी वजहसे उसे अपनेको सुरेशके आगे परदेसे ढकना उचित नहीं लगा। बड़ी-बड़ी रात तक वह और सुरेश, रोग और रोगीकी व्यवस्था पर विचार करते रहते थे। अपनी अस्तव्यस्तताके आगे नीनीको किसीका भी खयाल नहीं था। स्वामीके आगे वह दुनियाको भूल चुकी थी। प्रभाके आगे ढेरसे सवाल रहते थे। डाक्टर उठा या नहीं, आज देर क्यों

हुई, चाय ठण्डी तो नहीं है, साँझको खाना कम क्यों खाया है। साथही जबरदस्ती वह साँझको उसे घूमने भी साथ ले जाती थी। बस्तीके बाहर तीन-चार बँगलोंकी उनकी कालेनी थी। पासही अन्वेषण-विभाग की बड़ी इमारत थी। इधर-उधर बड़े-बड़े हरे-हरे फैले हुए खेत थे।

सुरेशको मरीजके बाद प्रभाकी बातोंमें खूब आनन्द आता था। रोगीके साथ जो सम्बन्ध था, उसीमें वह व्यस्त रहता। कई-कई बार टेम्परेचर और पल्स देखता, दवाके नुस्खे बदलता। थक जब जाता, प्रभा आती थी। कई बार वह प्रभाको गलतियों पर झिड़क भी दिया करता था। रोजही प्रभा अपना सारा भार निभाती। अपनी कसमें दे-देकर रोगका सही हाल पूछा करती थी।

तीसरा सप्ताह कटनेको था कि एक दिन सुरेशने गोल कमरेमें प्रभा और नीनीको बुलाकर कहा, "अब कोई डर नहीं है। मुझे जानेकी इजाजत मिल जानी चाहिये।"

प्रभा मुरझा गई। नीनीने कुछ दिन और रुक जानेको कहा। सुरेश कुछ कह नहीं सका।

एक दिन सुबहको सुरेश अकेले ही बाहर घूमनेको निकल गया था। सुरेशपर प्रभा और नीनी बातें कर रही थीं। प्रभा बोली, "भाभी, डाक्टर अजीब आदमी है। एक लड़कीसे उसने प्रेम किया था......."

"प्रभा ?"

"सच बात है।"

नीनी दवा देनेके बहाने बाहर चली गई।

उस रात्रि सब सोये थे, दोका घण्टा बजा। नीनी सुरेशके कमरेका दरवाजा खोल भीतर आ बोली, "डाक्टर बाबू।"

आँखें मलता सुरेश उठकर बोला, "क्या है ?"

"प्रभासे अपनी सारी बातें कहनेका आपको क्या हक था।"

"नीनी।"

अपना नाम पाकर नीनीका सरा गुस्सा पिघल गया।

"तुमने वह पत्र क्यों लिखा था। इतना लिखना! अपने मरीजोंको छोड़कर आना पड़ा, इस तरह घबरा जाना अनुचित है। गृहस्थीके भीतर तो यह हमेशा ही लगा रहता है।"

"ओ भाभी!" पुकारती प्रभा कमरेमें दाखिल हुई। आकर बोली, "भैयाकी तबियत फिर खराब हो गई है।"

सुरेशने चुपचाप पाँवमें जूता डाला और वहाँ पहुँचे। योगेश बाबू अनर्गल बक रहे थे। टेम्परेचर भी बढ़ गया था। सुरेशने 'इन्जंक्शन' दिया और कहा, "डरकी कोई बात नहीं है। बेकार दिनको तुम लोग ताश खेलते रहे हो;—आराम चाहिये।"

सुरेशको फिर नींद बड़ी देरमें आई। सुबह उसकी नींद टूटी, देखा कि नौकरानी चाय लेकर आई थी। प्रभा आज नहीं आई थी। उसने पूछा, "प्रभा कहाँ है ?"

"बीबी ?"

"हाँ।"

"वह तो तड़के घूमने चली गई हैं।"

उसे चाय पीनेका उत्साह नहीं रहा। चुपचाप कुछ सोच रहा था कि नीनी आकर बोली, "चाय ठण्डी हो रही है।"

चाय पीता सुरेश बोला, प्रभाकी नाखुशी पर सोच रहा था।"

"वह कहाँ चली गई ?"

"अकेले घूमने ।"

नीनी चुप रही ।

"अब मुझे जाना है ।"

"हमें भी यह देहात अच्छा नहीं लगता, लेकिन क्या करें ?"

"ठीक ही है ।"

"कमाईका क्या हाल है ?"

"पैसा मिल जाता है ।"

"कब तक अकेले ही रहनेका इरादा है ?"

"नीनी !"

"ठीक मुझे पूछनेका कोई अधिकार नहीं है, न ।"

"वह हक माँगे मिल भी तो नहीं सकता ।"

"फिर तुमने मुझे ही क्यों बुलाया था ? इतने डाक्टर दुनियांमें हैं ।"

"मेरा अपना विश्वास था कि तुम आओगे । हमारी भलेही लड़ाई हुई थी, मनमें मैल जमा करना नहीं सीखे थे ।"

"मैं यह सब व्यवहार नहीं मानता ।"

"तब एक दिन बहती गंगामें कूदकर मुझे क्यों बचाया था ।"

"कर्तव्य था वह । अशेय सबकी रक्षा सीखा था ।

"और आज !"

"मौतको भी देखता हूँ, मरीजको भी । स्वार्थको पहचानता हूँ और......"

"क्या डाक्टर ?"

"एक दिन चाहना उठी थी कि तुम्हारे स्वामीकी जिम्मेदारी लेना गलत बात है। एक छोटे इन्जक्शनसे उनको निपटा सकता था। तब क्या होता ?"

"डाक्टर।" दोनोंकी चार आँखें हुईं। नीनी सिहर उठी। मन्थर गतिसे बाहर चली गई !

नौकरने आकर एक लिफाफा दिया। सुरेशने पढ़ा—"गैरज़िम्मेवार तुम हो। आदमीकी कमज़ोरीके साथ अपने कर्तव्यको तुम भूल जाते हो। तुम्हारा विश्वास मनसे उठ गया। खयाल ग़लत निकला, तुम भी सिर्फ पुरुष हो।—प्रभा।"

दोपहरको नीनीने प्रभासे पूछा, "तू डाक्टरसे प्रेम करती है ?"

"झूठ है भाभी।"

"झूठ।"

"भाभी !"

"प्रभा।"

"झूठ है, झूठ है !!"

"आज सुबह डाक्टरने चाय नहीं पी। तेरा इन्तज़ार करता रहा।"

"तब तुम जाकर क्यों नहीं पिला आईं भाभी।"

"प्रभा।"

"भाभी क्या तुम अपना कर्तव्य भूल गईं ? एक दिन तुमने जरा अव्यवहार पर इसी डाक्टरको धमकी दी थी। उसको अपने घरमें बुलानेका बहाना पाकर तुम सब कुछ भूल गईं। असमर्थ तुम हो।" कहकर प्रभा चुपके बाहर खिसक गई।

संध्याको प्रभाकी एक चिट सुरेशको मिली। लिखा था—"रातको एक बजे बड़े शहतूतके पेड़के पास मिलना। एक जरूरी बात कहनी है।"

खा-पीकर सब लोग बैठे थे। प्रभा बोली—"भैया, मैं तो कल जानेकी सोच रही हूँ।"

"देहातसे ऊब गई?" योगेश बाबू बोले।

"अपनी किताबें लाना भूल गई हूँ।"

"हाथके हाथ तो इन्तजाम हो नहीं सकेगा?"

रात्रिको अपने कमरेमें सुरेश बैठा हुआ था। नीनीने आकर सुरेशको सौ-सौके चार नोट देते हुए कहा—"उनके कहनेसे देने आई हूँ।"

"नीनी मैं पेशेवाला डाक्टर बनकर नहीं आया था।"

"तुम अपनी बातके पूरे निकले। पाँच सालमें एक बार भी नहीं आये। खत भी नहीं दिया।"

"वक्त कहाँ था। फिर डर था कि कहीं तुम!"

"डाक्टर, लाचार न करो।"

"समझनेमें तुमने गलती की।"

"नहीं, और यह तो तुम भी मानोगे कि तुम्हारी ज्यादती थी। मेरी व्यक्तिगत बातोंको तुम क्यों जान लेना चाहते थे? क्यों तुमने वह लम्बी चिट्ठी लिखी थी?"

"लेकिन तुम्हारी धमकी।"

"ठीक वह बात थी।"

"नीनी।"

"हाँ; पिताजी यदि 'पिस्टल' घर छोड़ जाते, तुम्हारा खून कर डालती।"

बड़ी रात गुजर चुकी थी नीनी चली गई। सुरेशने ओवरकोट पहन लिया और बाहर निकला था कि देखा; प्रभा तेजीसे भीतर चली गई। उसने पुकारा—"प्रभा!"

प्रभा बढ़कर चली ही गई। वह अवाक् खड़ाही रह गया।

दूसरे दिन सुबह उसकी नींद टूटी, देखा कि प्रभा खड़ी थी। वह अचकचाकर बोला—"प्रभा।"

"डाक्टर बाबू, माँफी माँगने आई हूँ।"

नीनी कमरेमें आई, प्रभा बाहर चली गई। नीनी बोली—"कल शामको जाओगे?"

"हाँ।"

"फिर कब आओगे?"

"देखो।"

"इन्तज़ाम करवाये देती हूँ।" कह नीनी चली गई।

अपने कमरेमें आकर नीनीने देखा कि प्रभा एक चिठ्ठी उसके बिस्तरमें फेककर भाग गई है। उसने खोलकर पढ़ा, "भाभी, मैं डाक्टरको प्यार करती हूँ। कल रात इरादा किया था कि उसे पिस्टलसे मार डालूँगी, किंतु असमर्थ रही।"

बाहर आकर नीनीने पुकारा—"प्रभा।"

देखा प्रभा गुमसुम खड़ी थी। वह बोली—"क्या है प्रभा?"

प्रभाकी आँखें लाल थीं।

"तू बीमार है।" कह नीनीने प्रभाका हाथ अपने हाथमें लिया। देखा, उसे भारी बुखार था। सुरेश आया, देखकर बोला—"निमोनिया हो गया है।"

प्रभा बुखारमें बक रही थी, "भाभी तुम पापिन हो। स्वामीको भूल गईं ....।"

प्रभा सो गई थी। नीनी अपने कमरेमें आई। एक चिट्ठी लिखी और सुरेशके हैण्डबैगमें रख आई।

आधी रातमें पिस्टलकी आवाज सुनकर सुरेश उठा, आकर देखा, नीनी मरी पड़ी थी।

प्रभा आकर बोली—"डाक्टर, मेरी भाभीको बचा लो।"

"वह मर गई है।" सिर झुकाये सुरेश बोला।

"भाभी मर गई।" प्रभा बेहोश हो गई थी।

कमरेमें आकर सुरेशने हैण्डबैग खोला। चिट्ठी पढ़ी—

"सुरेश,

तुमको, पतिको, प्रभाको धोखा देनेके बाद एक दिन मैंने अपनेको भी धोखा दे दिया।

तेरी ही"

सुरेशने चुपचाप अपना हैण्डबैग उठाया। स्टाथस्कोप लिया और बाहर अन्धकारमें रास्ता टटोलता बढ़ गया।
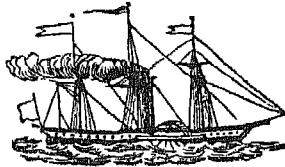
आविष्कार

चित्रकार अपने नये चित्रको गौरसे देख रहा था।

बहता नाला। पास छोटी-छोटी झाड़ियाँ। नीला-नीला आसमान और भेड़ियाके पाँवोंमें मरा बकरीका बच्चा। बच्चा—निर्जीव, निश्चल सोया, सुन्दर-सुन्दर......।

चित्रकारकी आँखें चित्रपर टिकी कुछ ढूँढ़ रही थीं। किसीने पीठपर हाथ रखते कहा—"खूनी ?"

चित्रकारने फिर देखा, वैज्ञानिक अपने नीले सूटमें खड़ा था। वैज्ञानिकने कहा—"अच्छा चित्र बनाया है। उसकी आँखें ही सारे भाव स्पष्ट कर देती हैं। तुम बधाईके पात्र हो। कहो, यही नाम तुमने भी चुना होगा। यही तो तुम्हारी भावना होगी। अब क्या सोच रहे हो। उलझन कैसी ? निश्चिन्त हो लिख दो......"

"वैज्ञानिक।" चित्रकारने चित्रपरसे आँखें उठा, उसका आँखोंमें डूबो, कुछ टटोलते कहा।

वैज्ञानिक कहता रहा—"वातावरणके अनुकूल चित्र है। जितनी विभिन्नता है, उतना ही सजीव। बच्चा अबोधताका पुतला और......।"

"चुप रहो वैज्ञानिक! व्याख्या कर लेनेको मैंने यह नहीं बनाया। दिलका एक तकाजा था, वही चित्रपर बखेर दिया। पर मैं यह न सोचता था। मेरा खयाल था, इसका उपयुक्त नाम होगा—'पैसा और मजदूर।' पैसा मजदूरको कुचलता है। मजदूरकी बेबसीका ध्यान किसीको नहीं।"

"ओ...हो...हो।" वैज्ञानिक हँस पड़ा। "बड़ी गम्भीर सूझ है। कहते तुम पतेकी बात हो। लेकिन अपना-अपना दृष्टिकोण है। यही ठीक सही।" रुककर—"चलो-चलो, मैं तुमको लेने आया हूँ।"

चित्रकार उठा। साथ हो लिया। शहरको छोड़ दोनों एक पगडण्डीकी ओर बढ़े। अन्तमें पहाड़ीपर चढ़ने लगे। चढ़ते-चढ़ते वैज्ञानिक बोला,—"थक तो नहीं गये।"

"थकान......।" चित्रकार अटक पड़ा। बोला फिर, "'पेंटिंग' की थकान और इसमें अन्तर है। तुमने 'सराय' का चित्र देखा है। '——' का बनाया : बूढ़ा मुसाफिर उसकी बीबी, एक बच्चा, रात्रिको चुपचाप सरायके एक कोनेमें बैठे हैं। चाँदनीकी छायामें तीनोंके चेहरेसे थकान टपकती है। वह मात्र हमारे हृदयके भावों और मस्तिष्कपर कब्जा करती है। यह हमारे शरीरसे बन्धित है। कितना भारी फर्क है।"

दोनों पहाड़ीकी चोटीकी ओर बढ़ रहे थे। एक टीलेपर बैठकर वैज्ञानिकने अपनी जेबसे कैमराकी तरह छोटा-सा यन्त्र निकाला और चित्रकारसे कहा—

छाया में

"देखो ?"

" 'घरर-र-र-र.........।' कुछ दिखलाई दिया ?"

"नहीं "

"कोण गलत होगा ।"

" 'घरर...रर ररर' अब ।"

"ठहरो-ठहरो ।" कह चित्रकारने आँखें यन्त्रसे हटा लीं ।

"उफ।" जैसे भारी थकानके बाद, साँस, लेनेका मौका मिला हो ।

"क्या देखा ?"

चित्रकारकी आँखें अभी तक, सहमी, डरी उसने पायीं । चित्रकार बोला—"बना जङ्गल...बड़ी-बड़ी चींटियाँ, मनुष्यको खा रही हैं । पीछे-पीछे मुरझाये पत्ते जमीनपर फैले हैं । उनपर कई जिन्दे मनुष्य पड़े हैं । वे हिलते हैं, डुलते हैं, चीखते हैं और आखिर हारे असहाय लेट जाते हैं ।"

"यह तो जीवनका एक पहलू है—चित्रकार ! इसमें डर क्या ? इतनी-सी बातसे डर गये । यह आविष्कार एकदम नया होगा । जो मनुष्यता और जीवनकी पहेलियोंको सबके आगे पेश करेगा । 'समस्या' न रहेगी फिर । इसके आगे जटिल सवाल हल हो सकेंगे । यह तो निरा एक Idea (भाव) है । मैं चाहता हूँ, तुम कुछ ऐसे चित्र बना लो । लो और देखो ।"

चित्रकारने देखा—श्मशान, अँधियारा । चीख उठा—"वैज्ञानिक ? वैज्ञानिक ??"

वैज्ञानिक चुप ।

"अरे, तुम भी क्या ?"

वैज्ञानिक चुप यन्त्र पकड़े था, रहा ।

चित्रकारने आँखें अलग हटा लीं। कुछ देर तक यन्त्रको और वैज्ञानिक को देखता रहा। कुछ कहना चाहकर भी कह न सका। अपनेमें ढूँढ़कर भी कुछ जैसे खोया लगा।

कहा फिर—"वैज्ञानिक यह क्या ? क्या मनुष्यकी सभ्यता यहीं खात्मेपर है।"

"क्या कहा ?"

"यह कैसा दृश्य था। एक मनुष्य दूसरेको हड्डियोंके टुकड़ोंसे मार रहा है। खून, घाव...? तुम भी उनमें मुझे झगड़ते लगे।"

"लड़-झगड़।" वैज्ञानिकने कहा—"यह तो सङ्घर्ष है। अपने लिए हमें सब निभाना है। इसमें आश्चर्यकी बात नहीं। यह रोजका हाल है।"

"रोजका।" चित्रकारने हल्के दुहराया।

"हाँ, हमें रोज अपनेको चालू रखनेके लिये लड़ाई लड़नी पड़ती है और देखो....।"

"घरर—घरर....ररर।"

चित्रकारने देखा : युवक-युवतियाँ नग्न नाच रही थीं। कितना पतन। कैसा श्राप।

"बस...।" कह चित्रकार उठ बैठा—"चलो घर चलें।"

"अभी कुछ और देख लो। यहीं बस नहीं। आगे और है—भलेही अग्राह्य सही। हमसे अलग नहीं। हममें ही है...।"

"वैज्ञानिक," चित्रकार जोरसे बोला—"क्या कहते हो ? मैं इस तर्कका पोषक नहीं। मेरी दुनिया कुछ और है।"

"कुछ और।" वैज्ञानिक ध्रुपदमें हँसा। "वही सब नहीं, कुछ और

जरूरत भी है।"

"जरूरत।" चित्रकारके मुँहसे निकला।

"कभी सही। अभाव ही। खैर—देखो, देखो।"

"हैं, हैं, हैं....भाग चलो, भाग चलो।" चित्रकारने आँखें मूँद लीं। फिर आँखें मलते पूछा—"यह तुम क्या ढूँढ़ रहे हो, कहाँ पहुँचोगे। मत-लब क्या है?"

"देखा नहीं तुमने। सारी दुनिया, बड़ी इमारतें, इसी तरह गिर पड़ेंगी—एक दिन। न तुम होगे, न हम। हमारा अस्तित्व एक धोखा रह जावेगा।"

"यह झूठ है। मैं इस पर विश्वास नहीं करता।"

"नहीं करते। तो, देखो न। हिम्मत क्यों हार रहे हो?"

घरर...घरर...ररर...ररर...।

"देख रहे हो न इतनी गाड़ियोंका रोजका काम मुरदोंका लाद ले जाना है। क्या देखा; बच्चे मर रहे हैं। उधर दाहिनी ओर वह गरीब औरत रो रही है, उसका स्वामी चोरीमें सात सालको जेल गया है। पेटके लिए चोरी की थी—कानूनने पकड़ लिया। और......।"

"तुम जानते हो, मैं सिर्फ चित्रकार हूँ। 'विचारक' नहीं। फिलासफी भी मुझे परेशान करती है। जिन्दगी कट रही है, कटने दो। उसके मनोविज्ञानसे वास्ता नहीं। अच्छा अब चलो।"

"यही इतना है बस। आगे अभी यन्त्र कुछ पकड़ नहीं पाता। कुछ तुमको भी सूझा?"

"उठो।"

दोनों उठकर नीचेकी ओर बढ़े। वैज्ञानिक कह रहा था, "तुम देख रहे हो न, कितनी विभिन्नता दुनियामें फैली है। इधर महल, उधर झोपड़ियाँ। वह मोटर जा रही है, हम पैदल ही जिन्दगीका सफर कर रहे हैं। हमारे आगे आजकी रोटीका भी एक सवाल है।"

चित्रकार चुपचाप बढ़ रहा था। रौजकी बातमें क्या राय दी जावे।

शहरकी चौड़ी सड़कपर एकाएक चित्रकार रुक पड़ा, कहा—"चलो।"

"कहाँ ?" वैज्ञानिकने कौतूहलसे पूछा।

"सामने, देखते नहीं हो।"

"नहीं, नहीं।"

"चलो भी, वह बुला रही है।"

"क्या तुम उसे जानते हो ?"

"हाँ, आजकल वह मेरे नये चित्रकी भावना है।"

"भावना——।"

"सच कह रहा हूँ। कुछ वैसे बुरी नहीं। शायद तुमको पीछे गाली देनेकी नौबत नहीं आवेगी।"

"ठहरो भाई।"

"क्या ?"

'वह देखो......अरे सड़कके किनारे—वह वह भिखारिन मर रही है।"

"मर रही है—मरने दो। न तुम्हारी सामर्थ है कि उसकी मौत रोक लो। न मेरी। तुम क्यों बेकार इतनी फिक्र कर रहे हो। तुम-हम उससे बाहर नहीं। उसका हमसे लगाव है।"

"नहीं, उसे देख लेनेकी चाहना रह जाती है।"

"चाहना, चलो भी वह खड़ी न जाने क्या सोचती होगी।" चित्रकारने वैज्ञानिकको अपने साथ ले लिया।

सुन्दर फर्श बिछी, किनारे कई तकिये। सामने दिवालपर आठ ही बजाती रुकी घड़ी। नीले-नीले रङ्गमें पुती दिवाल। और एक युवती जामुनी साड़ीमें बैठी।

वैज्ञानिक दरवाजेपर ठिठक गया, सोचा ; भिखारिन मर रही है। उसके पास अपना कोई नहीं। उसकी असहायताकी यह उपेक्षा? वह लौटकर भिखारिनको दिलासा देगा—। उसे धर्म समझावेगा। उसे शान्तिसे मरनेकी सीख पढ़ावेगा। उसके हृदयमें समाजके प्रति उठते विद्रोहको हटा लेगा।

वैज्ञानिकने पीठ फेरी, चाहा नीचे उतर पड़े, कि चित्रकारने जोरसे पुकारा—"वैज्ञानिक?"

वैज्ञानिककी आँखें फिरीं, वह युवती घुर रही थी। अब कहा—"तशरीफ रखिये।"

वह चुपके एक कोनेमें सिमटकर बैठ गया। उलझन हट गयी थी। तकियेका सहारा ले लिया था।

चित्रकारने कहा—"कुछ सुनाओगी नहीं।"

वह गाने लगी—"...... ...।"

एक विषाद-पूर्ण गीत था। पहाड़ीका चारागाह, खेलते बच्चे, एकाएक आसमानका घिर जाना, बच्चोंकी घबराहट, फिर बरफका तूफान। घबड़ाये बच्चोंकी भाग-दौड़ और निपट अन्धकारमें बच्चोंका खो जाना। फिर अगली सुबह बरफकी जमी सतहपर सूर्यका चमकना। सुफेद फर्श—कहीं-

कहीं बीच-बीचमें उठी काली-काली सतह-सी—बच्चोंकी लाशें....।"

वैज्ञानिक आँखें मूँदे झूमने लगा और आँखें भर आयीं। खयाल आया फिर कल; कुछ साल बाद, जब गानेकी उम्र निपट जावेगी। देखी-सी फिर एक छाया—सुफेद-सुफेद बाल, झुरियाँ पड़ी...वही सुन्दर वेश्या और...।

वैज्ञानिक चौंक उठा, जैसे किसीने हिलाया हो। कुछ नहीं सूझा। गाना बन्द हो चुका था। लगा फिर, एक दिन वह वेश्या कौन जाने जीवन से ऊबकर आत्महत्या कर ले। रङ्गीनताका आखिरी अध्याय वही होगा क्या ?

फिर गाना शुरू हुआ। वह उठा और चला आया। चुपचाप आगे बढ़ा। बरसातके दिन। कच्ची जमीनपर कीड़े बढ़ रहे थे। वह रुक गया। उनका तमाशा देखने लगा। वह लम्बा-लम्बा सांप-सा आगे बढ़ता, गोल-गोल मिट्टीके घेरे बनाता, वहीं रहता। उसने लकड़ीका टुकड़ा उठाया, उसे छुआ—वह सिकुड़ गया। निर्जीव पड़ा रहा। जब आहट बन्द हुई, तब फिर चलने लगा।

भिखारिनकी याद आयी। वह वहीं पहुँचा। भिखारिन मर गयी थी। वह कहती लगी—अब आया तू घमण्डी वैज्ञानिक, एक दिन तुझे भी कुछ प्राप्त नहीं होगा।

भिखारिन अर्द्ध-नग्न थी। उसने अपना रेशमी रूमाल निकाल और उसके चेहरेपर फैला दिया।

अब आगे वह बढ़ा। बढ़ा होटलकी ओर। मनमें भारी उचाट था। सोचता—मक्खियोंकी जिन्दगी चन्द मिनटकी, जानवर कुछ दिन रहते हैं। मनुष्य कुछ साल और दुनिया कुछ शताब्दी। सब—सब......

पुलपर बढ़ते सुना, 'छप-छप'। देखा—नदीमें कछुए एक बकरीके

बच्चेके चारों ओर घेरा बनाये उसे खा रहे थे। असहाय बच्चा तड़फ रहा था। उसने आँखें मूँद ली, चाहा कि नदीमें कूद पड़े। वह नहीं रहेगा अब! इतनी पीड़ा इतना दुःख...।

किसीने पीछेसे हिलाते कहा—"क्या सोच रहे हो?"

"तुम चले आये चित्रकार।" वह चिल्लाया। "चित्रकार! चित्रकार...!!"

"तुम रो रहे हो।" चित्रकार अवाक् हो बोला।

वैज्ञानिक संभल गया। कहा फिर "चित्रकार, जीवनमें सुख नहीं—यही क्या हमारी भूख है।"

"वैज्ञानिक...।"

दोनों होटल पहुँच गये थे।

चित्रकारने मेजपर बैठकर पुकारा—ब्याय? ब्वाय?? मीनू???

"............"

फिर खाना मँगवाया। दोनों खाना खाने बैठ गये। वैज्ञानिकने बड़ा आलू का टुकड़ा मुँहमें डाल लिया और निगल गया। आँखोंमें अब भी आँसू थे।

चित्रकारने फिर पुकारा—"ब्वाय—दो पेग 'जान हेग।'

"नहीं—नहीं," वैज्ञानिकने टोकते हुये कहा—"एक अपने लिये मँगवा लो।"

"अपने लिये, नहीं। तुम भागना क्यों चाहते हो? कहीं तो डटकर खड़े रहा करो।"

"भागना......"

खा-पीकर दोनों चुपचाप कुरसियोंमें बैठकर सिगरेट फूकने लगे।

आविष्कार

वैज्ञानिक बोला—"इस होटलका भी एक व्यक्तित्व है, दायरा है—अधूरा।"

"अधूरा...हा, हा, हा; चित्रकार हँस पड़ा—"यार तुम यह क्या कह रहे हो ? मुझे तो होटलकी जिन्दगीमें पूरा मजा मिलता है।

"लेकिन..."

"क्या......"

"कुछ भी हो। अपना-अपना खयाल है। किसी दिन यह होटल भी नेस्तनाबूद हो जावेगा। हजारों, लाखों आदमियोंका बही-खाता यहीं दबा रहेगा।"

दोनों उठकर बाहर चले आये। अपने-अपने घर पहुँच गये।

कुछ दिन बाद चित्रकार नये चित्र बनानेमें लीन था। करीब-करीब खतम कर चुका था।

"एकाएक वैज्ञानिक आ बोला—"इतनी सुबह-सुबह।"

"कल रात-भर सोया नहीं। यह देखो....।"

"हैं, हैं।" वैज्ञानिक आँखें फाड़-फाड़कर चित्रको देखते बोला।

"क्या है। कितना सुन्दर चित्र है। मुझे यह चित्र खूब लगा है। चाहता हूँ, चित्रवाली युवतीमें रल जाऊँ।"

"रल जाऊँ।" वैज्ञानिकने दुहराया।

"यह गलत नहीं—।"

"ओ' चित्रकार यह तो उसी रमणीका चित्र है।"

"रमणीका ?" चित्रकारने आश्चर्यसे पूछा।

"क्या तुम नहीं पहचानते हो। उस वेश्याके चेहरेके सारे भाव व्यक्त हैं। यह असह्य है। उस नारीको क्यों इस तरह पोत रहे हो।"

"पोत...। यह झूठ है।"

"झूठ...।"

"मैं दावेके साथ कहता हूँ। वैसे तुम जानते हो, मैं सारी स्त्री जातिका कायल हूँ—सब युवतियोंका। चाहता हूँ मौतकी अन्तिम घड़ी, कोई कुछ रङ्गीन साड़ियोंके आँचल भिगो, उनका पानी मुँहमें टपका दे। और मैं निश्चिन्त सो जाऊँ।'

"निश्चिन्त...।,,

"तब आत्मा प्यासी नहीं भटकेगी।"

"क्या तुम आत्मापर विश्वास करते हो ?"

"विश्वास ? कहीं कुछ उलझन तो लगती नहीं कि अविश्वाससे खेलूँ। अविश्वास साध्य है। वही ठीक लगता है। अविश्वास भले ही विद्रोह लावे, हमारी भारी जरूरत है।"

"विद्रोह और जरूरत ?"

"तुम क्या चाहते हो वैज्ञानिक।"

"कुछ नहीं।"

"यह झूठ है। मैं जानता हूँ। तुम एक स्वप्नको सजीव बना लेनेके फिराकमें आविष्कार कर रहे हो।"

"क्या...ठीक...नहीं। यह ठीक है, मैं नया आविष्कार कर रहा हूँ। यन्त्रसे मेरा सम्बन्ध है, लेकिन लेन्ससे खेलते दृश्योंसे मैं अलग रहता हूँ। उनसे मुझे वास्ता नहीं। वे अलावा हैं। रोज प्रयोगशालामें भारी वक्त काटना है, कट जाता है।"

चित्रकारने पूछा, "सन्ध्याको सिनेमा चलोगे।"

आविष्कार

"मुझे उन चलती तसवीरोंका शौक नहीं।"

"आज चले चलना।"

"अच्छा, साँझको सिनेमा हालमें मिलूँगा।"—कहता वैज्ञानिक चला गया।

अब चित्रकारने तसवीरके चेहरेको घूर-घूरकर देखा। कपड़े पहिन भागा-भागा वेश्याके यहाँ पहुँचा। देखा, वह सो रही थी। चाहा, उसे चूम-चूमकर जगा दे। डर गया। लौट आया। हिम्मत हार गया था।

लौटकर बैठे आँखें मूँदे एक बार उसके आगे सोयी रमणीका बिखरा चित्र आया। सारा...।

उसने अपना अलबम खोला। कुछ फोटो निकाले। बड़ी देरतक उनको देखता रह गया। एक फोटोपर रुक पड़ा।

उसने राइटिंग पैड निकाला और खिन्न हो लिखना शुरू कर दिया।

उमी,

आज फिर तेरी याद हो आयी। याद है, तुझे मैंने कितनी चिट्ठियाँ नहीं लिखीं। अपने दिलकी बातें, अपनी भाषामें लिख, तुझतक पहुँचाते कहीं हिचक न रही। तू जवाब नहीं देती। जैसे जवाब दे नहीं सकती। और जानता हूँ, जवाब पाकर मैं कुछ खाली फिर भी रह जाऊँगा।

आजकल अजीब 'मूड' में हूँ। पिछले पत्रमें मैंने तुझे अपने वैज्ञानिक दोस्तकी बातें लिखी थीं। अजीब आदमी है। लगता है, संसारकी सारी निराशा पिये हो। सोचता हूँ, तुझे अपने दिलकी बातें लिखकर मैंने गलती की। आज चन्द दियासलाईकी सींकें और जला लेनेको कागज साथ भेज रहा हूँ। अकेले कोनेमें सब चिट्ठियाँ जला देना। सुफेद-सुफेद धुआँ

निकलेगा। वहीं मेरा ठिकाना है। हमें भी तो एक दिन ऐसे ही धुएँ में रह जाना है।

न, उमी, तू अलग रहना चाहती है। रहना—मैं ही कहाँ चाहता हूँ कि कोई मेरे नजदीक रहे। बचपनका लम्बा अरसा लगता है, झूठ था। तब तुझमें समझ न थी। आज तू समझदार हो गयी है। साथ भेज रहा हूँ—तसवीर। इसका चेहरा एक वेश्यासे मिलता है। आजकल वही मेरी परेशानी संभाले है। मेरे पास कोई और साधन भी तो नहीं। याद है, तुम्हारी शादीके बाद मैं अकेला छूट गया था। फिर......।

तसवीर तुम देखना। खूब ही देखना। वैज्ञानिकका नया आविष्कार अभी कुछ आगे नहीं बढ़ा है।

तुम्हारा

'______'

सन्ध्याको वैज्ञानिक और चित्रकार सिनेमा-घर गये। दोनों साथ-साथ फिल्म देखने लगे। वैज्ञानिकने चुपके कहा-"अपनेको धोखेमें क्यों डुबो रहे हो चित्रकार।"

"धोखा ?"

"देखते नहीं, सिर्फ तमाशा है ! व्यवहारमें यह खरा नहीं। जिन्दगीका तमाशा इससे सुलझा है। अच्छा तो विदा ।"

चित्रकार कुछ कहे कि वैज्ञानिक बाहर निकल गया।

फिर चित्रकारका मन नहीं लगा। वह भी उठ आया। देखा, सामने पेड़की छायामें वैज्ञानिक चुपचाप खड़ा था।

आगे बढ़, नजदीक पहुँच, वह पुकारना चाहता था—वैज्ञानिक, कि वैज्ञा-

निकने ओठोंपर उङ्गली लगा, चुप रहनेको कहा।

चित्रकारने आगे बढ़, वैज्ञानिकके इशारेकी ओर देखा। चाँदनी खिली, रात्रि, सांप सोया। चूहेका बच्चा उसके मुँहसे खेल रहा था।

चित्रकार चौंक उठा। एकाएक सांपने अपना फन उठाया। चूहा संभला। गलती मालूम हुई। भागना चाहा। सांप उसे पकड़ने बढ़ा। अब आधा चूहा सांपके मुँहमें था। फिर पूरा चूहा सांप निगल गया। सांप इधर-उधर घूम-फिरकर बिलमें घुस गया।

अब वैज्ञानिकने गहरी सांस ली। कहा—"चलो।" चित्रकार चुपचाप साथ हो लिया।

वैज्ञानिक कह रहा था—"किसीका दुःख नहीं सहा जाता है और उसीको सुखमें देखकर ईर्षा होती है। हम एक बातपर रह नहीं जाते।"

चित्रकार चुप रहा। कुछ देरतक वैज्ञानिक भी कुछ नहीं बोला। फिर कहा, "वह देखो।"

चित्रकारको कुछ भी न दिखलाई दिया। पूछा—"क्या?"

"वह सामने।"

"सामने...।"

"कब्र है न। वहीं उसके रिश्तेदारोंने दिया बालकर उजाला कर दिया है। कौन जाने, वह जवान मर गया हो। उसकी प्रेयसी किसी लड़केके हाथ तेल भेजकर, दियेकी रोशनीमें अपनेको भुला लेना चाहती हो।"

"तुम पागल हो गये हो।" चित्रकारने टोका।

"पागल।" वैज्ञानिक कहकहा मारकर हँस पड़ा। "संसार नाशकी ओर है...।"

"वैज्ञानिक ?"

"चुप रहो, चुप —चुप...............।"

'वह कितना मधुर संगीत है। मृत्युगीत, सुना जङ्गली लोगोंमें आज भी चालू है। किसीकी मौतकी पीड़ा वे देख नहीं सकते।"

"मौतकी पीड़ा......?"

"सुना, मरनेपर बहुत दुःख होता है। इसीलिये उनके यहाँ मधुर गीत गानेका रिवाज है। कहते हैं, कुछ जातियोंमें मरते वक्त युवतियाँ नाच, गाकर प्राणीको शांति देती हैं।"

"क्या ?"

"तुमने 'किलोपेट्रा'का नाम सुना है। उस युवतीके सौन्दर्यकी आज भी तारीफ है। भले ही कई सदियां गुजर चुकी हैं। वह अपने प्रेमीके आगे रात्रिको अपना सबसे प्रिय नाच दिखा, मोह, सुबह जहरका प्याला पीनेको सौंपती थी। हरएक प्रेमीपर यह लागू था।"

चित्रकार साथ-साथ सुनता बढ़ रहा था। अब वैज्ञानिक भी चुप हो गया। दोनों धीरे-धीरे रास्ता नाप रहे थे कि सुना—अल्लाह ! अल्लाह !!

देखा : भिखारी बूढ़ा, लाठीके सहारे कदमपर कदम मिलाकर चल रहा था।

वैज्ञानिक रुक पड़ा। खूब भिखारीको देखा, कहा—"इसकी भी लालसायें हैं। दिनभरमें चन्द पैसे मिल जावें। 'उसी खुदा' ने इसे भी पैदा किया है।"

चित्रकार सुनकर बढ़ गया।

आगे सड़कके चौराहेपर वैज्ञानिक बोला—'गुडनाइट" और चित्रकारसे

हाथ मिला अपने मकानकी ओर बढ़ गया ।

चित्रकार सीटी बजाता-बजाता वेश्याके यहाँ पहुँचा । वहाँ पहुँच चुप-चाप बैठ गया ।

वह बोली—"क्या सोच रहे हो ?"

"तुम्हारे दिमागपर...।"

"मेरा दिमाग ।"

"वैज्ञानिक कहता था कि स्त्रियोंका और बन्दरोंका दिमाग एक-सा होता है —खासकर तुम्हारी जातिकी स्त्रियोंका । जब चाहे खेल लिये और फिर... ।"

"अपने दोस्तकी हिफाजत किया कीजिये । कहीं कोई 'भेड़ा' न बना दें ।"

"मुझे तो बना चुकी न । अब उसकी बारी होगी ।"

"यह झूठ है ।"

"झूठ—।"

"मैं खुद तुम्हारे 'स्टूडियो' में गई थी । याद है—तुमसे तसवीर खिंचवानेके लिये । रोज ही तुम टालते गये । बहाना बनाते रहे—भावना नहीं उठती । उतनी हाजिरीके बाद तुमने एक दिन कहा था—तुम्हारी तसवीर शायद ही बना सकूँगा ।"

"बात ठीक है, तुम्हारी तसवीर बनती और तुम भाग जातीं ।"

"भाग जाती ?"

"जरूर । आज ही न देख लो......।"

"झूठ है, वादा कर भी अब तुम महीनोंमें आते हो ।"

"तुम सुनकर आश्चर्य करोगी, अनजाने मैंने तुम्हारा चित्र बना लिया है।"

"कहाँ है—।"

चित्रकार अब संभला, कहा—"खयाली चित्र हर वक्त साथ रखता हूँ।"

वह हँस पड़ी।

चित्रकार भी चला आया।

*　　　*　　　*

एक हफ्ते बाद चित्रकार अपने नये चित्रके बारेमें सोच रहा था। एका-एक वैज्ञानिकने दरवाजा धकेलकर पुकारा—"चित्रकार।"

चित्रकारकी आँखें फिरीं, देखा : वैज्ञानिकके बाल बिखरे थे। कपड़े फटे थे। माथेपरसे खून टपक रहा था।

चित्रकार देखकर सन्न रह गया : चीख उठा—'वैज्ञानिक।'

"ताज्जुब नहीं दुनिया समझती है, मैं पागल हो गया हूँ। राह-भर बच्चे मुझपर कंकड़ बरसाते रहे। चलते लोग घूर-घूरकर देखते रहे। ओ चित्रकार, मैं अब पा गया—पा गया।" कह वैज्ञानिक नाचने लगा—चिल्ला-चिल्लाकर कहता, "पा गया! पा गया!"

फिर वैज्ञानिकने चित्रकारका हाथ पकड़ते हुए कहा—चलो, और घसी-टता बाहर ले आया। चलते-चलते पहाड़ीकी चोटीपर दोनों पहुँचे। वैज्ञा-निकने यन्त्र ठीक किया।

घरर—घरर—ररर, ररर।

चित्रकारने देखा। सुन्दर बाग, चारों ओर फूल खिले। फुहारेके पास कबूतरका जोड़ा खेल रहा था।

'हा, हा, हा," वैज्ञानिक ठहाका मारकर हँस पड़ा। हँसा, तीव्र स्वरमें

चिल्लाया—"पा गया ! पा गया !!"

उसने यन्त्र पहाड़ीसे नीचेकी ओर लुढ़का दिया। फिर उसी सीधमें नीचेकी ओर दौड़ा।

चित्रकारने पुकारा—"वैज्ञानिक, वैज्ञानिक, ठहरो।"

वैज्ञानिक चिल्लाता चला जा रहा था, "पा गया।"

"ठहरो, ठहरो।" चित्रकार काँपते बोला—"उधर नहीं, नहीं...।"

वैज्ञानिक रुका नहीं। भागता चला गया।

चित्रकारने जोरसे पुकारा—"वैज्ञानिक।"

वैज्ञानिक नदीके किनारे पहुँच पानीमें पैठ रहा था।

चित्रकार सन्न रह गया, कहा फिर, "डूब जाओगे वैज्ञानिक।"

वैज्ञानिक पानी चीरता आगे बढ़ गया।

चित्रकारने देखा, गले तक पानी था।

फिर देखा—एक, दो, तीन—कई बुलबुले उठे—

आँखें मूँद चीख उठा—"ओ' वैज्ञानिक, क्या यही नया आविष्कार था?"

छायामें

मैं भाग्य और भगवान्‌को नहीं मानता। इस सामाजिक नैतिकताका कायल नहीं। जानता हूँ, कि इस भाग्य और भगवान्‌को एक वर्गने दूसरे पर हुकूमत करनेका साधन बनाया है। वह बड़े हैं और हम छोटे। फिर हम निम्न, निम्न, हैं! एक आदमी दूसरेके न्यायका अधिकार भी ले लेता है। यह कम आश्चर्यकी बात नहीं। हम तो केवल उस न्यायके भीतर साधन हैं। हमारी आवाज यदि उन तक पहुँच भी जाती है, तो वे अनसुनी कर देते हैं। और रोज हमारी शक्ति कुचली जाती है—रहेगी। हम इसी तरह चुपचाप पड़े-पड़े ही रहेंगे। हम गरीब हैं। हमारा बैंक एकाउन्ट नहीं। हमारे पास न मोटरें हैं, न कोठियाँ। मैं उस मध्यम श्रेणीका आदमी हूँ, जिनके पास भाग्य और भगवान्‌का सहारा सौंपकर, उनको असहाय बना दिया गया है। उनको इस घिसी दुनियामें चलनेमें भले ही कुछ सहू-

लियत नहीं, जीवनसे वे फिर भी इन्कार नहीं कर सकते हैं। उनकी व्यवस्था और लोग बनाते हैं, खुद जैसे कि वे अज्ञानी हों। तभी कभी-कभी मुझे बहुत गुस्सा चढ़ता है। आखिर ये श्रेणियाँ क्यों और किसने बनायी हैं। एक आदमीके दिमागको दूसरा क्यों मोल ले लेता है? इसके अलावा शारीरिक शक्तिकी खरीदारीका भी भाव-तोल अब होगा। मजदूरोंकी मजदूरीका उपयोग, एक दरजा सिद्ध करता है। मजदूरको असहाय मान, उसे विश्वासकर लेनेके लिये भाग्य और भगवान्‌का अज्ञेय खिलौना सौंप दिया जाता है। तो भी यह कैसा अविश्वास और अरोयता जारी है। अविश्वासको जीवन-हथियार मान लेनेपर आदमी कर्त्तव्यमें जरूर निभ जावेगा। वह आदमी तब अपना मूल्य आँक दूसरेके तराजूके सहारे अपनेको नहीं तोलता है, यहीं तब उसके विद्रोहका आरम्भ होगा। इसकी दवा समाज, सामाजिक-कानून और धर्ममें नहीं है। केवल यही क्यों, आदमी अपना स्वार्थ भी नहीं भुला सकता है। उसे तो अपने समस्त कारोबारकी पैंठ लगानी लाजिम हो जाती है। वह किसी-न किसी तरह निभना सीख लेता है। यदि कारण ही सब कुछ है, आदमी क्यों उसको अपना नहीं लेता है। वह कर्मका भुलावा क्यों मान लेने तुलता है। हर वक्त निराशावादी रहेगा, जैसे कि वही उसका आपेक्षिक घनत्व हो। विज्ञान आदमीको खरा निकाल देता है। लेकिन आदमी भाग्यका रोना नहीं छोड़ सकता, यह उसकी संस्कृति है। इसका आदी वह बन चुका है। न जाने कब वह सब संस्कारोंके साथ हल हो चुका। अब उससे अनायास ही इन्सान अलग नहीं हो सकेगा। अपना रोग पहचानकर भी, वहीं-वहीं रोगीकी तरह पड़ा-पड़ा रहेगा। वहींसे पुकारेगा—यह भाग्य और भगवान् रूठ गया है। उनके आसरे वहीं सड़ता-गलता रहता है।

छाया में

जीवनके भीतर-भीतर पैठकर कब-कब मैंने छान-बीन नहीं की। कुछ भी नहीं पाया। कई बार गृहस्थीके भीतर भी मैंने टटोला। कुछ हासिल न होकर भी कुछ पीड़ा बटोर चुका हूँ। यह गृहस्थी तो सारी माया-जालसे भरी है। भूल-भुलैया है। यह अपने-परायेका अनजान खेल है। आदमी हठ करता रहेगा। पाना उसे कुछ भी नहीं है। यह दुनिया बहुत वस्तुवादी हो चुकी। आदमी उसके बीच धातुकी तरह आज पड़ा है। कोयला है, विज्ञान सिद्ध करेगा, कि हीरा और ग्रेफाइट भी उसीकी जात है। विज्ञानके अनुसार तीनों एक ही जातिके हैं। तब भी मूल्य अलग-अलग हो गया है। उपयोग और जरूरतपर वह दरजोंमें बाँटे गये हैं। उसी तरह आदमियोंके अलग-अलग दरजे हैं। बड़े, छोटे, मध्य श्रेणीवाले; रोगी, पंगु; भिखमंगे, मजदूर, किसान—ये सब आदमी ही हैं। फिर भी एक दूसरेको घूर-घूरकर देखता है। इनके बीच आपसी कोई खास समझौता नहीं है। एक दूसरेसे घृणा करता है। अपने-अपने दायरेकी देख भाल वाली रक्षाका विवेकपूर्ण ज्ञान सबको है। हरएक सावधानीसे चला करता है। चारों ओर आँखें फाड़-फाड़कर देख लेता है कि कहीं खतरा तो नहीं। हरएक अपनी पैनी दृष्टिसे एक दूसरेके दिलका हाल आँक लेना चाहता है। इस अविश्वासके बाद भी आदमी अपनेको सभ्य मान फूला नहीं समाता। ज्ञानवान अपनेको साबित करता रहेगा। किसीकी कहाँ सुनता है। अपने दम्भ और घमंडको ऊँचा उठाकर आस पासवालोंपर रोब गालिब करेगा—देखो यह हूँ मैं।

तभी तो मुझे दुनियापर हँसी आती है। जरा एक धक्का लगकर खतम हो जानेवाले इस आदमीका यह क्या हाल है। चन्द सालकी उसकी यह जिन्दगी है। उसको सांप, कौवे आदिकी तरह सैकड़ों साल कोई जिन्दा

थोड़े ही रहना है। तब भी वह नहीं समझेगा। यह है उसकी सभ्यता और ज्ञानका हाल। ऐसे ही आदमियोंपर तो मैंने सोच लेना सीख लिया है, तब मुझे लगता है कि हजारों लाशोंके बीच जैसे कि मैं खड़ा हूँ। उन सड़ी लाशोंकी बदबू महसूसकर मनमें उबकाई उठती है। कुछ को पहचान देखता हूँ। उनमें कीड़े भी पड़ गये हैं। मुझसे वह सहा नहीं जाता। वहीं मैं खुद कमजोर हूँ, अन्यथा इतना विवाद नहीं उठता। यह सब हाल नहीं बयान करता। मैं भी बुद्धिवादी हूँ। मैं भी सड़ रहा हूँ, कभी-कभी अपने शरीर पर पड़े कीड़ोंको चिमटीसे निकाल छिः छिः के साथ फेंक देता हूँ।

इस छिः छिः ने मेरे जीवनमें कब प्रवेश कर लिया, कुछ भी मालूम नहीं। आज बच्चेवाली युवती माताओंकी ओर मैं आँखें गड़ा-गड़ाकर देखता हूँ। इस बदलते जमानेमें 'बच्ची' की टट्टी पेशाबको भी वह छिः छिः गिनती है। तब सोचता हूँ--यह भावना अचैतन्य ही बचपनसे जीवनके भीतर पैठ जाती है। जिससे फिर आजीवन छुटकारा नहीं हो सकता और होश आते ही आदमी सब और सारा हाल जान समझ लेता है। कुछ भी अनुचित हो मानना पड़ेगा। अभागे आदमीपर तभी मुझे बहुत तरस आता है। क्योंकि भाग्य-भाग्य वह चिल्लाता रहेगा। भगवानकी पुकार भी करेगा। यह नैतिक आरोप है जो आदमीको रोज असमर्थ बनाता जाता है। आदमी उससे अलग नहीं रहेगा। क्या सब मुझे याद नहीं है। अस्पतालसे एक मरीज निकाल दिया गया। कारण कि वह गरीब था। कौन उसका भुगतान करता। वहाँके लोगोंने देख भालके प्रति अनिच्छा जाहिर की। पूछकर, कौन और क्या-क्या तुम्हारा दुनियामें है, समझ गये वह अभागा है। उस मरीजको मैंने सड़कपर कराहते देखा था। उसके

पाँवमें एक बड़ा घाव था, जिसमें कीड़े पड़ गये थे। सरकारी अस्पतालने इस नागरिककी रक्षाको उपेक्षित गिना। वह तब सड़क तक लँगड़ाता-लँगड़ाता, वहींपर पहुँच लेट गया। उसे उम्मेद थी तांगा या मोटर उसके जीवनको मिटा देगी। किन्तु किसी दयावान् आदमीने, उसे किनारे सरका दिया। यह आत्म हत्या भी समाजके हकमें बुरी होती। यह कैसा उसका उपकार था। और एक मैं हूँ, उसे उठाकर घर ले आया हूँ। यह मेरा घर नहीं। किराया देता हूँ। हिसाब किताब साफ रखता हूँ। मकान-मालिक हाथ जोड़े खड़ा रहा करता है! नहीं, वह मुझे किसी दिन निकाल देता। तब न जाने मुझे कहाँ-कहाँ भटकना पड़ता। अब तो मैं उसके घावको धोता हूँ। वह उन कीड़ोंकी कुलबुलाहटसे बार-बार सिहर उठता है। मैं टिंचर-पानीसे उस घावको साफ किया करता हूँ। नासूर हो गया है। बहुत बदबू चला करती है। पड़ोसी एक डाक्टर हैं। उनकी दयासे मलहम प्राप्त हो गया। वही लगाकर पट्टी बाँधता हूँ। किसी भी तरह हो, यह अहसान उस अपरिचित आदमीकी तरफ बरत रहा हूँ। यही है दुनिया, लाखों पड़े आदमी ऐसे मिलेंगे। तभी तो गुस्सा चढ़ता है। इनकी जरूरत क्या है। इस तरह आबादी बढ़ाकर भी कुछ लाभ नहीं मालूम होता।

आदमी समझदार है। वह कुत्तों और चूहोंको जहरकी गोलियाँ देकर मिटाना चाहता है। यही स्वस्थताका एक सही पहलू है। घोड़ोंको भी गोली आसानीसे मार दी जाती है। यदि पंगु आदमियोंको मिटा देनेका सवाल उठेगा, वह हत्या मानी जावेगी। ताजीरात हिन्दकी दफायें तब काममें आती हैं। यह बातें किसी भी तरह समाज पचा लेनेको तैयार नहीं है।

यह है सभ्यताका हाल। इस प्रकार मिटानेवाला पहलू पीछा लाता है। किसी भी तरह उसको अपनाना हम नहीं चाहते। इसीलिये अपने इस रोगीकी फिक्र दिन भर मुझे सताया करती है। जानता हूँ, वह अच्छा नहीं होगा। इस तरह बहुत दिन घसीटनेके बाद भी दुनियामें चलने लायक शायद ही वह हो सकेगा। कभी गुस्सेमें मैं पड़ोसी डाक्टरसे कहता हूँ—'डाक्टर इसको खतम कर दो। ताकि उसे एक दिन इस दुनियासे छुटकारा मिल जाय। कोई गोली दे दो, दुःखसे वह छुट्टी पा जावेगा।'

डाक्टर—हँसकर कहता, 'मियां दर्शन शास्त्र डाक्टरोंको मत सिखलाओ उनका जो काम है, वे बखूबी निभा लेते हैं।'

तब अपने भीतर मुझे भारी गुस्सा चढ़ता है। अस्पतालके डाक्टरोंने इस मरीजको जगह नहीं दी तो, एक दयालुने सड़कके किनारे सरकाया। और एक हूँ मैं जो कि उसे, जूठे बासो आदमीको ताजा बनानेकी फिक्रमें हूँ। यह सब कैसा रोजगार है। क्या मेरे सिवाय दुनियाके और लोग दुनियाका सही-सही हाल जानते हैं। और हूँ मैं ही एक बेवकूफ! फिर भी अपने-को कोसता नहीं हूँ। इस दुनियाको मैंने खूब-खूब देख लिया है। कभी भी इसमें कसर जमाना नहीं चाहा। पिछला सारा जीवन जितना भी टटो-लता हूँ, लगता है, एक भारी दुख खरीद, आज यह अजनबी दूकानदारी चला रहा हूँ। इस रोगीको लेकर ही अपनेको सही-सही मुझे साबित नहीं करना है। मैं तो हूँ गलत! इसीसे अपना अधिक हवाला नहीं देता। अपना परिचय खुद लिख बार-बार मैंने मिटा डाला है। मैं नहीं चाहता कि यह आदमीकी जाति मुझे पहचान ले। मेरा वश चले, आज ही सबको मिटा डालूँ। तब भी लाचार हूँ। इसीलिये आदमीकी तरह अपनी पिछली

भावुकताको बिसार नहीं सकता।

सच, वह रोहणी ही थी। मैं उसकी सारी बातें समझता था। चाहकर भी उस रोहणीके लिये कभी कुछ नहीं कर सका। इस रोहणीको बहुत दिनोंसे जानता भी था। तब वह रोहणी कितनी सरल थी। आगे अनमनी और उदास रहने लगी। कुछ कहेगी नहीं। जीवन उत्साह जैसे कि चूक गया हो। मैंने हर तरहसे उसे समझाया, विश्वास दिलाया—कठिनाईमें निभ जाना ही सही इम्तहान है। रोहणी मानती कब थी। जरा बात होगी, आँसू टपकने लगेंगे। उसकी माँका खत आया है, रोहणीको बुलाया है। रोहणी नहीं जायगी। आज वह इस घरसे बाहर कहीं, किसीसे मुँह दिखलाना नहीं चाहती है। वह हर तरह मुझे सहारा देनेकी ठाने है। चाहती है कि दृढ़ बनी रहे। नारी कोमलताकी सहज कमजोरीमें पिघल, फिर खुद ही उलझ-उलझ जाती थी। उसके मायकेके लोग सम्पन्न हैं। उनको वह सहारा नहीं बनायेगी, अपनी गरीबीका ओट बना, उनकी दयाकी वह भूखी नहीं थी। भीख वह उनसे माँग लेनेको तैयार नहीं। हर तरह अपना जीवन, उसे यहीं तो काटना था। अपने पतिको गरीब भला क्यों वह साबित होने देती। वह अपने बचपनको बिसारना सीख चुकी थी। इस गृहस्थीमें वह आयी है। जो कि सही ठिकाना था। अब बाकी जीवन रोहणीको मेरी ही गृहस्थीमें काटना था—सुखसे हो, चाहे दुःखसे। किसीको उसकी गृहस्थीसे दिलचस्पी लेनेका कोई अधिकार नहीं। कुछ फायदा थोड़े ही है। वह दोनों—पति-पत्नी, ठीक तरह इसे चलाना जानते हैं। वे कहाँ किसीका आसरा ताकते हैं। पतिकी

लापरवाही रोहणी भाँप लेती थी। ठीक तरह न खाना, न पहनना, हर वक्त काम, काम, काम! घर लौटकर आयेंगे, वही दफ्तरकी फाइलें, इस तरह आखिर कै दिन गुजर होगी। तब रोहणी कुढ़कर कहती; अच्छी नौकरी है, यह।"

"जो कुछ है, यही है। तुम कुछ दिन मायके न चली जाओ।"

"मायके!" रोहणीको यह शब्द डस लेता था।

"तब जाने दो। यहाँ तो....!"

"वह जैसे कि सब मेरी ही फिक्र करनेकी जिम्मेदारी ले लेवेंगे। ठीक है, यहीं। बार-बार न जाने क्यों तुम डराया करते हो।

"खुद तुम ही झुँझलाती हो।"

"मैं!" यह कसूर जैसे कि अभीतक रोहणीको मालूम नहीं हुआ था। अब ज्ञात हो जानेपर, वह शरमा, जमीनपर निगाह गड़ा देती। वह पतिकी आभारी है। उसका आदर करती है।

और मैं कुछ क्या कह सकता। वह रोहणी और मैं ही इस गृहस्थीको चला रहे थे। रोहणीके मायकेका एक छोटा नौकर भी है। उसके बाद हमारी तीस रुपये महीनेकी आमदनी है, जो पहली तारीखतक वसूल हो जाती है। एक बड़ा दफ्तर है। वहाँ पढ़े-लिखे मजदूरकी हैसियतसे मैं काम किया करता था। वहाँ बहुत और भी बाबू लोग थे। वहाँ भी आदमी-आदमीका झगड़ा था। वहाँ भी दलबन्दी थी। बड़े बाबू ब्राह्मण थे और छोटे कायस्थ। दोनोंका अपना-अपना संगठन था। लेकिन मैं तो जाति नहीं मानता हूँ। आदमीको पहचान लेना कुछ थोड़ा सीखा है। वह बड़े बाबू स्वभावतः कुछ 'ईडियट' थे। तब छोटे बाबूका ऊपरी हाथ चलता

था। यह उनकी बड़ाई थी। मैं फिर भी दल बनानेका पक्षपाती नहीं। कारण, कि आदमीके जीवनमें बहुत रुकावटें हैं। आदमीके बारेमें तब अधिक ज्ञान मुझे नहीं था। मैं तो समझता था कि आदमी ईमानदार और सभ्य जन्तु है। यह कब मालूम था, कि उस आफिसका भी शासन होगा। वहाँ हुकूमत करनेवाले बेकार कायदे चालू रहते हैं। उसके लिये अनुशासनकी कोई अनुभूति बाकी नहीं रह जाती है। वह बड़ा-बड़ा दफ्तर :

एक बड़ी मेज। उसपर नीली रोशनायीसे रंगी चादर और फैले हुए बड़े-बड़े कागज। जिनको कि छोटे-छोटे कङ्कड़ोंसे हम दबा लिया करते थे कि वे उड़ नहीं जायें। नियमित सुबह नौ बजेसे संध्या साततक काम करना। जरा कुछ कहनेपर कठोर और कड़वी धमकियाँ। मेजके चारो ओर वाली कुर्सियोंपर क्लर्क बैठे रहा करते थे। वैसी ही पाँच सात मेजें थीं। सबका निरीक्षण कार्य छोटे बाबूके सुपुर्द था।

मैं उस चेहरेको आज भी नहीं भूला हूँ। उस चेहरेपर पिशाचकी छाप थी। उस हृदयपर बार-बार मैल जमा होता रहता था। उसी तरह जैसे कि गोबरके ऊपर बैठा कीड़ा गोलियाँ बनाया करता है। छोटे बाबूका समाज भी मैला ही था। लेकिन......। सोचता हूँ उस हिन्दुस्तानी अफसरकी बातें जो कहता था, 'बाबू यह हाल है हिन्दुस्तानका। सात हजार अर्जियाँ आयी थीं, किसको नौकरी दी जाती।'

मैं हिन्दुस्तानकी बेकारीसे परिचित था। अपनी-सी हैसियतवालोंको कौन-कौन नहीं पहचानते हैं। कुछ भी मनको ऊँचा न उठा, चुपके कहा था, "हजूर ठीक फरमाते हैं।"

कितना बनावटी जीवन। वहाँ फैली गन्दगी कम नहीं हुई। वह हजूर

अपनेको बहुत ऊँचा गिना करते थे। यह सब देख, कई बार मैं अलग एकान्तमें ठहठहा मारकर खूब-खूब हँसा करता था। मेरी सूखी हँसी, दिलपर खट-खट आवाज करती जैसे कि मैं भी रोगी होता जा रहा था। उसके बाद छोटे बाबूके बर्तावसे दिलपर कभी तो बहुत बड़ी चोट लगती थी। रोहणी बाजारसे कुछ कटपीसके टुकड़े लानेको कहती है। वह इतवार है। मैं कहाँ मना करता हूँ। चाहता हूँ, कि किसी भी तरह रोहणी खुश रहे। लेकिन उन इतवारको भी दफ्तर है। चौबीस घण्टों और महीनेके पूरे दिनोंकी चोखी मजदूरी गिनकर मिलती है। कुछ कैसे कहा जा सकता है। झट छोटे बाबूकी तेवरियां चढ़ जायेंगी। वह बोलेंगे; "आप लोग बेईमान हैं, ईमानदारीसे काम नहीं करना चाहते हैं। अभी चाहूँ, आपको बर्खास्त करवा सकता हूँ। यह यतीमखाना नहीं है। आप लोगोंने नौकरी क्या मजाक समझी है।"

उस बातको विवाद नहीं बनाया जा सकता है। पढ़ा-लिखा मजदूर कानूनको जानता है, अपना विद्रोह उसीके लिये बुरा होगा। वह जीवन-लालच एकाएक नहीं बिसार सकता है। तबसे कई बार मैं ईमानदारीकी व्याख्या कर लेना चाहता हूँ—आज भी यह मरीज जिसके घावपरवाले कई कीड़े दवा लगाते मर जाते हैं, उसे भी मैं ठीक-ठीक आदमीकी तरह पहचान लेना चाहता हूँ। उन कीड़ोंको हथेलीपर रख देखता हूँ कि वे रेंगते भी हैं। उनका भी जीवन है : येह तब शरीरको खाकर जिन्दा क्यों रहना सीखे हैं। इसीसे बार-बार सोचता हूँ, दफ्तरमें छोटे बाबू इन कीड़ोंसे कम होशियार नहीं थे। और वह दफ्तर भी टेम्परारी था। ठेकेपर वहाँ काम जारी हुआ था। साहब अपने कामको जल्दी खतम देखना चाहते थे। उनकी

तरक्की उसपर ही निर्भर थी। और छोटे बाबूको उम्मेद थी, वे जल्दी बड़े बाबू बन जायेंगे। आदमी कब-कब अपने स्वार्थके लिये चौकन्ना नहीं रहा करता है।—बरसात है, बहुत गरमी, फिर वही काम, काम, काम......। फाइलें, पैड, बड़े-बड़े स्टेटमेण्ट। हर तरह अपनी कारगुजारी पूरी करनी पड़ेगी। आमदनीका मूल्य चुकाया गया है। आमदनीके लिये तब क्यों सहानुभूति बरती जाये।

किन्तु, रोहणीकी तबियत खराब रहती है। आजकल वह न जाने क्यों बहुत डरा करती थी। खाना भी ठीक ठीक हजम नहीं होता है। वह पीली भी पड़ती जाती है। दुःख तो वह बात बातमें इकट्ठा कर लेना सीख गयी थी। उसे कितना नहीं समझाया, कोई भी बात नहीं। इसी तरह दुनिया चलती है। खुद मैं न जाने किस तरह अपनेको चला रहा था, रोहणी भला कैसे जान लेती। वह दफ्तर, उस संस्था, वहाँके अफसरोंके प्रति भारी घृणा होनेपर भी, मैंने कभी अपनेको गलत साबित नहीं किया, तो रोहणीको कैसे धीरज देता। उसे समझाना चाहता था, नौकरीका यही हाल है, ऐसा ही रहेगा। वह तकरार भलेही न करे, परेशान रहेगी। बहुत थक जानेपर जब कुर्सीपर बैठ जाता था, रोहणी टकटकी लगाकर देखती रहेगी। उससे मैं क्या कहूँ। वह नहीं चाहती इस तरह रातको जाग-जागकर दफ्तरमें काम किया जाय। वह कहाँ जानती थी, तीस रुपया एक बड़ा खजाना है। जिसके आगे यह सारा जीवन और दुनिया ओछी है।

रोहणीकी तबियत खराब है। दर्द बढ़ता जा रहा था। सुबह आकर दायी सावधान कर गयी। रोहणी बच्ची है, रोने लगेगी। मैं उसकी

चिल्लाहट सुनता हूँ, किस तरह उसे धीरज दूँ। नौकरीपर फिर भी जाना है। आफिसमें रिट्रेंचमेण्ट (कमी) होनेकी सम्भाना है। कहीं बेकार हो जाऊँगा, फिर क्या गति होगी। रोहणीसे अधिक लोभ नौकरीका है। नौकरीसे ही रोहणीकी भी गुजर होती है। बेकारी एक लम्बे अरसेतक मैंने सही थी। बेकार आदमीकी कोई इज्जत नहीं होती। समाजके आदमी उसपर अँगुली उठाते हैं। जिन्दगीको चलावे तो पैसा चाहिये। वह पैसा जरूरत है और नौकरीसे मिलता है। चार जूते छोटे बाबू मारकर भी पैसा दे दें सब कुछ मैं सहूँगा। मेरी एक बीबी है। मैं गृहस्थ हूँ। मैंने माया-जाल जोड़ लेनेके बाद आत्म-सम्मानको बिसार दिया था।

उस दिन भी क्या रातको काम करना था। जरूरी एक रिपोर्ट, तैयार करनी थी। छुटकारा भला कैसे मिलता। रोहणीकी तबियत सुबहसे खराब थी, यह अच्छी तरह मैं जानता था। नौकरसे क्या होगा। और रातको काम भी कहाँ होता था। एक उदासी घेरती जाती थी। छोटे बाबूका हुक्म था रिपोर्ट खतम होनेपर जाना होगा। व्यक्तिगत साधारण बीमारियोंके पीछे काम नहीं रुक सकता है। ठीक था वह कथन भी। बार-बार खूनीकी ही आँखोंसे मैं उनकी ओर घूरता था। परवशता तो आदमीने खुद ही अपनायी है। वह कमजोरीको पी जाता है। अथवा इस तरह पड़ा क्यों रहता! रोहणीको मैंने हर तरहसे जाना है। एक दिन अबोध लड़कीकी तरह मेरी बातोंपर ताका करती थी। उसकी आँखोंवाला आश्चर्य भी कब-कब मैंने नहीं भाँपा। और वह शरमाना ही भूल गयी। पतिके आगे सब कुछ कह, तकरार करती थी। पीछे-पीछे पतिकी आज्ञा मान लेना,

अपना कर्त्तव्य उसने गिन लिया था। अपनी निजी झुँझलाहट वह डालती चली गयी। वही रोहणी माँ बननेका ख्वाब देख रही थी। कितनी खुश नहीं थी। मैं भी जानता था, उस माँके आगे पिताका दरजा पा जाऊँगा। मैं इसी तरह नौकरी करूँगा। रोहणी जीवनमें आगे चलेगी...... चलेगी...।

आज मैं कह सकता हूँ, यह नौकरी और उसके पीछे पैसा देना भी अनुचित है। वहाँ स्वस्थता नहीं। वहां छोटेबाबू सरीखे लुच्चे और बदमाश आदमीकी ही गुजर हो सकती है। उस नौकरीपर भी इस रोगी-की तरह कीड़े पड़ गये हैं। जिसका उपचार अफसरान नहीं करना चाहते हैं। जानकर भी अनजान वे बने रहेंगे। आफिसपर एक झूठा आतंक जमा, वे छोटेको कुचल-कुचल डालना चाहते हैं। उसे वह ऊपर नहीं उठाना चाहते हैं कि वह हल्ला करेगा। उसकी आवाज़ भी सुनाई देगी। दुनियामें हर जगह बड़ोंका ऊपरी हाथ है। छोटोंका अपना मान नहीं। यह सभ्यता आदमीको पंगु बनाती जा रही है। एक दरजा रोज अपनेको छोटा ही देखता है। अपनी निम्नतासे वह दबा ही रहता है। बड़े उसे कुचलेंगे और एक दिन इसी रोगीकी तरह सड़कपर मौतकी राह वह ताकेगा। भाग्य और भगवानके आसरे यहीं पड़ रहना उसका हेतु है। तब मैं ही क्यों तर्क किया करता हूँ। इतनी बड़ी दुनियाका भार कोई मुझे ही तो अकेले उठाना नहीं है। लेकिन मैं भी आदमी हूँ, मुझे भी दलील करनेका हक़ है। चाहे मेरा दावा झूठा ही क्यों नहीं हो, कह मैं भी सकता हूँ।

रोहणीके पास रातके तीन बजे पहुँचा था। वह मुझे छटपटाती

मिली। मैं दौड़ा-दौड़ा दाईके पास पहुँचा। वह आयी। रोहणी फिर भी छटपटाती-छटपटाती रही। मैं डाक्टरके पास पहुँचा उसने भी आकर हालत देखी। दोनोंने फैसला किया, रोहणी बहुत कमजोर है। उसकी ठीक परवाह होनी चाहिए थी। कुछ हो, रोहणी न जाने क्यों मर गयी। वह उतनी बड़ी निराशा, मुझे भयकी तरह लगी। यह आदमी कितना पागल है। मेरी तरह समझा करता है, रोहणी उसकी थी। उस सारी गृहस्थीका आख़री तमाशा देख तीन-चार दिन तक मैं आफिस नहीं गया और पाँचवें दिन जब पहुँचा, वही छोटे बाबूकी तेवरी चढ़ी आँखें मिलीं। वह बोले—"मिस्टर आपकी नौकरी............... ।"

वे और कुछ कहें कि मुझे गुस्सा चढ़ा। जोरसे एक चाँटा रसीदकर बोला—"मैं इस्तीफा देने आया हूँ। मुझे नौकरीकी कोई जरूरत नहीं है। यह सारा नौकरीवाला व्यवसाय एक गलत नींवपर खड़ा है।"

यही है न जीवनका एक खेल, तब इस रोगीको क्यों अपने घर लादकर ले आया हूँ। बेकार आदमी हूँ। साधारण-सी मजदूरी की है। दो ट्यूशन पास हैं। वे पैसा देते हैं। क्या मैं इस अपाहिज और अभागेको बचा सकूँगा। यह तो ग़रीब है। भाग्य और दाताके नामकी चिल्लाहट करता-करता सड़कपर पड़ा था। मैं हूँ बड़ा दयावान, उसे उठा लाया हूँ। इस सालेको खाना खिलाता हूँ। जानकर भी कि यह आदमीको जात, कुत्तेकी जातसे भी बुरी है।

क्यों यह न जाने मुझे लोभ देता है, उसकी एक बीबी है। उसके पास यदि मैं इसे पहुँचा सकूँ, वह इसकी हिफ़ाज़त करेगी। न जाने कहाँ

इसका गाँव है। अर्थात् जो मनमें आता है बका करता है। इस बेवकूफकी बातोंकी मुझे अधिक परवाह भी नहीं है।

रोहणी हो, चाहे यह रोगी। मैं दुनियाके बहानेको खूब-खूब पहचानता हूँ। जानता हूँ कि सभ्यताकी छायामें ....?